अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-38, अंक-5, 16-31 अक्टूबर, 2014

अंधेरे में
तीन प्रकाश
गांधी - विनोबा - जयप्रकाश

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य-अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक
वर्ष : 38, अंक : 05, 16-31 अक्टूबर, 2014

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'
बिमल कुमार अशोक मोती

संपादक बिमल कुमार
मो. : 9235772595
कार्यकारी संपादक अशोक मोती
मो. : 7488387174

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	पांच रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353

विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ	:	2000 रुपये
आधा पृष्ठ	:	1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ	:	500 रुपये

इस अंक में...

1. गांधी की ओर लौटना होगा... 2
2. खण्डित बनाम समग्र गांधी... 3
3. गांधी विचार : जैसा मैंने समझा... 4
4. वर्तमान युग के 'व्यास' विनोबा... 6
5. स्वराज्य के बाद अब साम्ययोग... 8
6. जयप्रकाश : जिन्होंने असफलता को... 9
7. 'रेडिकल सर्वोदयी' संपूर्ण क्रांति को... 11
8. 'गांधी-विचार' क्रांति का साधन कैसे... 12
9. छोटे किसानों से ही होगी... 14
10. राष्ट्रीय एकता और अनुशासन के... 16
11. गतिविधियां एवं समाचार... 18
12. और अंततः हे राम!... 19
13. कविता... 20

'सर्वोदय जगत' में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनके साथ सर्व सेवा संघ या संपादक मंडल का सहमत होना जरूरी नहीं है।

गांधी की ओर लौटना होगा

❑ जयप्रकाश नारायण

यदि लोकशाही अक्षम सिद्ध होती है और हिंसा से भी कोई समाधान नहीं निकलता है तो फिर रास्ता क्या है? **रास्ता पाने के लिए हमें गांधीजी की ओर लौटना होगा।** तब हम लोग देखेंगे कि गांधीजी पहले से ही हिंसा की व्यर्थता तथा लोकतांत्रिक राज्य की स्वभावगत सीमाओं से परिचित थे। अन्य राष्ट्रीय नेता जहां राष्ट्र-निर्माण के कार्यों की सफलता के लिए केवल राज्य-शक्ति पर ही भरोसा करते थे, वहां गांधीजी के दिमाग में यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि उनके सपनों का भारत, और इसलिए तत्कालीन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भी सपनों का भारत बनाने के लिए राज्य ही एकमात्र औजार नहीं हो सकता। इतना निश्चित है कि राज्य के काम के महत्त्व को वे कम नहीं आँकते थे और वह समुचित एवं प्रभावकारी ढंग से कार्य करे, इसमें उनकी दिलचस्पी समाप्त नहीं हो गयी थी। वास्तव में वे इसी बात के लिए चिन्तित थे कि राज्य यथासम्भव सर्वोत्तम लोगों के हाथों में रहे और वह उचित नीतियों, कार्यक्रमों एवं योजनाओं का अनुसरण करे। फिर भी उनको यह स्पष्ट दीखता था कि चाहे कितनी ही अच्छी नीतियां हों और कितने ही अच्छे लोगों के हाथों में शासन-सूत्र हो, राज्य स्वतः अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकता।

इसलिए उनकी योजना राज्य-शक्ति के साथ-साथ लोकशक्ति के निर्माण की थी। तदनुसार वे स्वयंसेवी कार्यकर्ताओं की एक बड़ी सेना लेकर जनता की सेवा करने, लोगों को शिक्षित एवं परिवर्तित करने, उन्हें संगठित करने तथा स्वावलम्बी बनाने और सामाजिक परिवर्तन एवं पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में उन्हें प्रत्यक्ष रूप से शामिल करने के उद्देश्य से जनता के बीच वापस जाने की तैयारी कर रहे थे। इन उद्देश्यों के प्राप्ति के लिए वे पहले की तरह ही सेवा, रचनात्मक कार्य, सौम्य पद्धति से विचार-परिवर्तन तथा आवश्यकतानुसार अहिंसक असहयोग या प्रतिकार का साधन अपनाने वाले थे।

गांधीजी अपनी योजना कार्यान्वित करने के लिए जीवित नहीं रहे और उनके जाने के बाद उनके तत्कालीन सहयोगियों ने, इस भ्रम में पड़कर कि हाथ में आयी हुई राजनीतिक सत्ता के सहारे ही देश की समस्या को हल करने में वे समर्थ हो जायेंगे उनके द्वारा दिखाये गये मार्ग पर दुबारा विचार तक नहीं किया। यदि उन्होंने वैसा किया होता और, जैसा कि गांधीजी चाहते थे, राज्य और जनता के बीच अपनी शक्तियों को विभाजित किया होता, तो स्वतंत्रता के बाद के भारत का इतिहास बहुत भिन्न होता। मैं समझता हूं, उनकी कठिनाई यह थी कि गांधीजी द्वारा बताया गया मार्ग परम्परागत मार्ग से मूलतः इतना भिन्न था कि वह उनके लिए कोई अर्थ नहीं रखता था और न वह उन्हें रुचता ही था। सफल क्रांतिकारियों द्वारा सत्ता से अलग रहने तथा जनता के स्वैच्छिक संगठन द्वारा क्रांति के लक्ष्यों को प्राप्त करने की कोशिश की बात कब किसने सुनी थी!

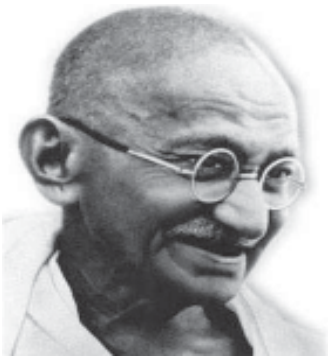

सौभाग्य से देश में *विनोबाजी* के समान नेता थे, जिन्होंने कुछ कुछ समय बाद आगे बढ़कर गांधीजी के हाथ से गिरी हुई मशाल को उठाकर थाम लिया। यह ठीक है कि गांधीजी जैसा चाहते थे, उस ढंग से पुराने स्वातंत्र्य-योद्धाओं की महान सेना को अभीष्ट दिशा में गतिशील तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को लोक-सेवक संघ के रूप में वे नहीं कर पाये। फिर भी वे रचनात्मक कार्यकर्ताओं को सर्व सेवा संघ के मंच पर एक साथ इकट्ठा कर सके और उन्हें गांधीजी के पुराने रचनात्मक कार्यक्रम के अलावा, 'सौम्य पद्धति से विचार-परिवर्तन' के एक व्यापक कार्यक्रम के साथ जनता के बीच भेज सके। *उस कार्यक्रम की पहली किस्त थी भूदान, दूसरी किस्त ग्रामदान और इसके बाद ग्रामस्वराज्य होगा। इस आंदोलन के क्रम में उत्पन्न खास-खास परिस्थितियों में कुछ स्थानिक सत्याग्रह भी हुए हैं। हमारे वर्तमान कार्यक्रम के संदर्भ में बड़े पैमाने पर सत्याग्रह करने की आवश्यकता हो सकती है जिसके लिए, मालूम होता है, परिस्थितियां परिपक्व हो रही हैं।* ❑

संपादकीय

खण्डित बनाम समग्र गांधी

गांधीजी परिवर्तनकारी शक्तियों के प्रेरणा स्रोत मुख्यतः दो कारणों से रहे हैं। एक तो उन्होंने उपनिवेशवाद व पूंजीवादी साम्राज्यवाद (आज के संदर्भ में नव उपनिवेशवाद एवं पूंजीवादी भूमण्डलीकरण) का विरोध कर उसका ठोस विकल्प दिया। गांधी के नेतृत्व में भारत की स्वतंत्रता का संघर्ष केवल स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए नहीं था, बल्कि उपनिवेशवाद एवं पूंजीवादी साम्राज्यवाद को वैश्विक स्तर पर खत्म करने के लिए भी था। उसमें क्रांतिकारी शक्तियों के वैश्वीकरण के बीज छिपे हुए थे। इसी कारण विश्व भर में क्रांतिकारी शक्तियों ने उनसे प्रेरणा ली।

दूसरे, परिवर्तनकारी शक्तियों ने गांधीजी के जिस अनूठे योगदान से भी प्रेरणा ली वह यह था सत्याग्रह की खोज। गांधीजी ने सत्याग्रह के माध्यम से क्रांति के तरीके में क्रांति ला दी। सत्याग्रह ने यह स्थापित किया कि जिस शक्ति के बल पर (अर्थात हिंसा की शक्ति एवं दण्ड शक्ति) सत्ता, शोषण एवं दोहन होता है, उस शक्ति को क्रांतिकारी न अपनाएं। क्योंकि हिंसा की शक्ति एवं शस्त्र बल से लोग तो बदल जाएंगे, लेकिन जो नयी सत्ता एवं नयी व्यवस्था आयेगी, वह भी हिंसा शक्ति एवं दण्ड शक्ति के बल पर ही चलेगी। हिंसामुक्त, शोषणमुक्त एवं दोहनमुक्त समाज बनाने का मार्ग सत्याग्रह के द्वारा ही सम्भव होगा।

इन दोनों कार्यों को करते हुए गांधीजी ने कई रचनात्मक कार्य एवं मनुष्य के चरित्र-निर्माण के कार्य को भी आगे बढ़ाया। ये कार्य नये समाज के निर्माण के लिए तथा नये समाज के लिए नये मनुष्य के निर्माण के लिए आवश्यक थे। अर्थात पूंजीवादी समाज के मूल्यों से मुक्त होकर शोषण, अन्याय व असमानता के मूल्यों से मुक्त होकर, नये समाज का नया मनुष्य कैसा होगा, इसके भी व्यावहारिक मंत्र गांधीजी ने दिये।

आज गांधीजी की बात करते हुए जो संदर्भ प्रकट दिख रहा है, वह पूंजीवादी वैश्वीकरण के अंतर्गत नव उपनिवेशवाद का है। इसका एक स्वरूप इस रूप में भी उभर रहा है कि प्रत्येक राष्ट्र के अन्दर पूंजीवादी वैश्वीकरण का एक तंत्र विकसित हो रहा है। यह तंत्र अपने ही राष्ट्र के अन्दर शोषण व दोहन को तीव्र कर रहा है। इस तंत्र के द्वीपों को तमाम सुविधाओं से सुसज्जित करने का कार्य कांग्रेस सरकार भी कर रही थी, तथा वर्तमान सरकार भी कर रही है। इस प्रकार पूंजीवादी वैश्वीकरण के अंतर्गत पहले जो प्रक्रिया प्रत्यक्ष रूप से एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के शोषण-दोहन के लिए अपनायी गयी थी, उसका नव रूपान्तरित रूप यह है कि प्रत्येक राष्ट्र के अन्दर पूंजीवादी वैश्वीकरण के तंत्र, अपने ही राष्ट्र के अन्दर जल-जंगल-जमीन व खनिज के दोहन का माध्यम बन रहे हैं तथा इन पर परम्परागत रूप से जीवन यापन करने वाले समुदायों का शोषण कर रहे हैं, उन्हें विस्थापित कर रहे हैं। इस नव-उपनिवेशवाद एवं आंतरिक उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष से जुड़े बिना, गांधी के मार्ग पर चलने का दावा करना एक पाखण्ड मात्र है।

गांधीजी का दूसरा महत्त्वपूर्ण योगदान क्रांति के तरीके में क्रांति का था। सत्याग्रह, बहिष्कार, सविनय अवज्ञा एवं वैकल्पिक रचना, इसके महत्त्वपूर्ण आयाम थे। गांधीजी ने इस योगदान के एक पक्ष को दुनिया भर के आंदोलनकारियों ने अपनी रणनीति के तौर पर इस्तेमाल किया। यह पक्ष सत्याग्रह, बहिष्कार एवं सविनय अवज्ञा से सम्बन्धित था। दुनिया भर के तमाम आंदोलनकारियों ने भी वैकल्पिक रचना की दिशा में कोई प्रभावी कार्य नहीं किया। इसके फलस्वरूप दुनिया भर के तमाम आंदोलनकारियों ने हिंसा के बजाय अहिंसक प्रतिरोध के लिए तो गांधीजी से प्रेरणा ली, परन्तु पूंजीवाद के विकल्प में नयी समाज रचना का कार्य आगे नहीं बढ़ा सके।

गांधी को अपनी व्यवस्था में समावेशित करने का कार्य पूंजीवादी वैश्वीकरण की (अर्थात पूंजीवादी नव साम्राज्यवाद की) शक्तियों ने भी किया। विरोध न किया जाये, इसके लिए अहिंसा को एक निष्क्रियता की अवधारणा के रूप में तथा सामाजिक सरोकार से च्युत व्यक्तिगत सद्गुण के रूप में प्रस्तुत किया गया। इसी तरह वैकल्पिक समाज निर्माण के लिए मनुष्य का कैसा चरित्र होगा, इस सन्दर्भ में गांधीजी ने बहुत-सी बातें कहीं। मनुष्य की प्रेरणा शक्ति एवं उसके मूल्य पूंजीवादी व्यवस्था की प्रेरणा शक्ति से कैसे भिन्न होंगे। शोषण, असमानता व दोहन के मूल्य से कैसे भिन्न होंगे, इस पर उन्होंने विस्तार से कार्यक्रम लिये। उनमें से कुछ को काट-छांट कर प्रस्तुत किया जाने लगा, जैसे स्वच्छता अभियान, भंगी कार्य निवारण, शराब बंदी, स्त्री शिक्षा आदि। खादी एवं ग्रामोद्योग तक के विचार को पूंजीवादी वैश्वीकरण की शक्तियां निगल जाने को तैयार हैं। इनसे सर्वाधिक सावधान रहने की आवश्यकता है।

अन्त में, 'सत्य ही ईश्वर है' इसके गूढ़ अर्थ को समझे बिना नये समाज के निर्माण का अधिष्ठान नहीं बन पायेगा। इसी प्रकार नाम रूप का मर्म समझने की भी आवश्यकता है। सेक्यूलर एवं संकीर्ण धर्म की अवधारणा से आगे जाने के सूत्र इनमें निहित हैं।

विमल कुमार

गांधी-विचार : जैसा मैंने समझा

❑ विनोबा

आध्यात्मिक बैठक

गांधीजी ने जो विचार दिया है, वह वृक्ष के समान है। उसकी अनेक शाखाएं हैं, जैसे सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि। परंतु आध्यात्मिकता उसका मूल आधार है। इसीलिए गांधी-विचार के चारों तरफ आध्यात्मिक तेजोपुंज दिखायी देता है।

गांधीजी को समझने के लिए यह बात ध्यान में रखना बहुत जरूरी है। नहीं तो स्थूल प्रवृत्ति के झमेले के बीच गांधीजी का असली स्वरूप ध्यान में नहीं आयेगा। गांधीजी हमेशा इस बात पर जोर देते थे कि चाहे जो काम करो, उसके द्वारा हृदयशुद्धि, चित्तशुद्धि होनी ही चाहिए।

हमारे देश में रामकृष्ण-मिशन ने पहली बार अद्वैत से प्रेरित होकर पूर्ण प्रेममयी सेवा का आरम्भ किया। इसी प्रकार गांधीजी ने पहली बार परमेश्वर की भक्ति का सरल सार मानव-सेवा में ही सिखा दिया। सेवा और उत्पादन, ये कर्मयोग के दो अंग हैं। रामकृष्ण ने सेवा के विचार का प्रचार किया। गांधीजी ने उसी विचार को आगे बढ़ाकर उसके दूसरे अंग—उत्पादक परिश्रम का विकास किया। मजदूर जिस प्रकार शरीर-परिश्रम करता है, उसी प्रकार हरएक को उत्पादक परिश्रम करना चाहिए, यह कर्मयोग का श्रेष्ठ विचार उन्होंने समाज के सामने रखा।

गांधीजी के लिए कर्म एक उपासना था। स्थूल क्रिया का उनके सामने अधिक महत्त्व नहीं था, जितना उसके पीछे की भावना का था। बाहर से वे हमेशा स्थूल कामों में डूबे हुए दीखते थे। लेकिन उस सारी खटपट से वे जलकमलवत् अलिप्त थे।

बापू की आत्मकथा जब प्रकाशित हो रही थी, तब एक बार उन्होंने मुझे उसके बारे में पूछा। मैंने बताया, ''आप सत्यवादी हैं, मिथ्या तो कुछ लिखेंगे नहीं, इसलिए किसी का नुकसान तो नहीं होगा। लेकिन फायदा क्या होगा, मालूम नहीं; क्योंकि जिसको जो लेना है, वही लेता है।''

बापू बोले, ''तुम्हारे जवाब से मुझे जो चाहिए था, वह मिल गया। 'नुकसान नहीं होगा', उतना बस है। जहां तक फायदे का ताल्लुक है—वे गुजराती में बोल रहे थे—*आपणां बधां कामोनुं परिणाम मींडुं छे*—(हमारे सभी कामों का परिणाम शून्य है)। उन्होंने हवा में उंगली से बड़ा गोल करके दिखाया और आगे कहा, *''आपणे तो सेवा करी छुटीए।''* (हमें तो सेवा करके छूट जाना है)। बापू का सारा का सारा तत्त्वज्ञान इसमें आ जाता है। इस शून्य में ही बापू की आध्यात्मिक बैठक थी।

आध्यात्मिक शंका-निवृत्ति पहले

बापू के और दूसरों के भी जीवन में हम देखते हैं कि उनके सामने कुछ आध्यात्मिक सवाल थे। उन सवालों का समाधान हुए बगैर वे आगे नहीं बढ़े। ईसा मसीह की जिन्दगी सिर्फ 33 साल की थी और उसमें से तीन ही साल सिर्फ वे फिलिस्तीन में घूमे। आज उनके विचार का असर सारी दुनिया पर है। परंतु पहले तीस साल तक उन्होंने क्या किया इसका पता नहीं। बात यह है कि कुछ बुनियादी सवाल थे, जिन्हें हल करके ही वे निकले। *'पड़ोसी पर अपने जैसा प्यार करो', यह बात बिना अनुभव के नहीं कही जा सकती।*

इसी तरह भगवान बुद्ध 'यज्ञ में हिंसा न हो', यह सवाल लेकर बिहार-उत्तर प्रदेश में घूमे, यह तो सभी जानते हैं। लेकिन जब उन्होंने तपस्या की तो क्या किया, किसी को मालूम नहीं। वे कितने मंडलों में गये, ध्यान के कितने प्रकार उन्होंने आजमाये और इन सबके परिणामस्वरूप उनके चित्त को कैसे शांति मिली और कैसे यह निर्णय हुआ कि दुनिया में मैत्री और करुणा ये ही शब्द हैं—यह सब हम नहीं जानते।

बापू की आत्मकथा में कुछ थोड़ी-सी झांकी मिलती है। उनके मन में कुछ आध्यात्मिक शंकाएं थीं और उनकी निवृत्ति के बिना वे काम में नहीं लगे थे। यानी मिस्टिक एक्सपियरन्स (गूढ़ अनुभव) के बिना बापू सेवा में नहीं लगे थे। यह सारा मैंने इसलिए खोला कि हम जीवन की गहराई में नहीं जाते और ऊपर के स्तर में काम चलाते हैं। मैं सचाई के साथ यह नहीं कह सकता कि ईश्वर के अस्तित्व का भान न होता तो मैं भूदान के काम में पड़ता भी। मुझे यह कहना ही पड़ता है कि ईश्वर का दर्शन होता है, साक्षात्कार होता है, स्पर्श होता है, तभी यह बनता है। अन्यथा विकारों का नाश नहीं हो सकता। यह सम्भव नहीं कि ईश्वर के दर्शन के बिना काम चलता रहे।

युगपुरुष

परमेश्वर की हिन्दुस्तान पर बहुत कृपा

रही है। अनादिकाल से लेकर आज तक अनेक महापुरुष यहां अवतरित हुए हैं और यहां के जीवन को कम-बेशी समृद्ध करते गये हैं। इन महापुरुषों की अंतिम कड़ी के रूप में और भविष्य में आने वाले महापुरुषों में प्रथम गिने जाने वाले गांधीजी थे। पुरातन परम्परा का फल और नूतन परम्परा की आशाओं का बीज जिनके जीवन में एकत्र हो गया हो, ऐसे महापुरुष बिरले ही होते हैं। ऐसे विरल महापुरुषों में से गांधीजी एक थे।

गांधीजी सत्पुरुष होने के अलावा एक नये विचार के प्रवर्तक भी थे। उन्होंने नया जीवन-विचार दिया। ऐसा नया विचार सभी सत्पुरुषों द्वारा प्रकट नहीं होता। जिस सत्पुरुष का गठन एक खास परिस्थिति में होता है, उसके मन में नया विचार पैदा होता है। और वह युगप्रवर्तक बन जाता है।

सामान्य धर्म-प्रचार और क्रांति, दोनों अलग-अलग बातें हैं। सामान्य धर्म का बोध तो ऋषि और संत हमेशा देते रहते हैं; लेकिन जब युग की मांग और संत के उपदेश का संयोग होता है, तब क्रांति होती है। जमाने को किस बात की जरूरत है, यह परखकर उसके साथ धर्म-विचार का बल और बाह्य परिस्थिति का बल, दोनों को जो जोड़ देता है, वह 'युगपुरुष' बन जाता है। गांधीजी ऐसे ही युगपुरुष थे।

नित्य विकसनशील

गांधीजी रोज-रोज बदलते, पल-पल विकसित होते रहे हैं। यह बात हमें भलीभांति समझ लेनी चाहिए, वरना गांधीजी को हम जरा भी नहीं समझ सकेंगे। यह आदमी ऐसा नहीं था कि पुरानी किताब के संस्करण ही निकालता रहे! वे इतने संवेदनशील (सेन्सिटिव) थे कि नित्य-निरंतर परिस्थिति के अनुसार बदलते जाते थे। *मैंने एक बार उनके बारे में एक शब्द कहा, जो कइयों को खटका था—'दगाबाज'!! संत एकनाथ का पद है। उसमें उन्होंने संतों को 'दगाबाज' कहा है, कारण वे आज भगवान का एक तरह से वर्णन करते हैं, कल दूसरी तरह! इसी तरह गांधीजी के बारे में भी यही कहना पड़ेगा कि यह शख्स बिलकुल दगाबाज था! कभी एक शब्द से चिपका नहीं रहता था। किसी को भी ऐसा भरोसा नहीं था कि आज गांधीजी ने जो रास्ता पकड़ा है, कल भी उसको पकड़े रखेंगे।* क्योंकि वे नित्य विकासशील पुरुष थे। उनका मन सदैव सत्य की शोध में ही रहता था।

गांधीजी ने शब्दों की प्रतिष्ठा बढ़ायी

शब्द में बहुत शक्ति होती है। शंकराचार्य ने एक जगह बोध दिया है—*केषां अमोघ-वचनम्?* किनका वचन अमोघ यानी व्यर्थ न जाने वाला होता है? *ये के च सत्य-मौन-शमशीलाः*—जिसकी वाणी में सत्य होगा, मौन यानी बोलने के पहले मनन होगा, शम यानी शांति होगी, उसका वचन अमोघ होगा। तब शब्द-शक्ति बनेगी। ऐसों के मुख से जो शब्द निकला, उसे सही होना ही है।

आज हमने *शब्द-शक्ति* लगभग खोयी है, ऐसा ही कहना चाहिए। गांधीजी के पहले इस देश में जो बड़े-बड़े नेता थे, उनके शब्द का लोग सीधा अर्थ नहीं समझते थे। एक रिवाज ही पड़ गया था कि भाषा में पेंच हो। अंदर एक बात रखना और बाहर दूसरी बात कहना। और उसे कुशलता माना जाता था।

लेकिन गांधीजी आये और उन्होंने ऋजुवाणी चलायी। हम जो बोलते हैं, वही बात हमारे मन में होनी चाहिए। आप अगर जन-शक्ति पैदा करना चाहते हैं, जनता का उत्थान चाहते हैं तो वाणी लोगों के हृदय में सीधी जानी चाहिए, इसलिए वाणी सत्य और संयत होनी चाहिए।

'जपुजी' में नानक कहते हैं—*घडिऐ सबदु सची टकसाल*—अपने पास सत्य की टकसाल होनी चाहिए। उससे उत्तम से उत्तम शब्द बन सकता है। गांधीजी आये और नया तरीका आरम्भ हुआ। लोगों के मन में विश्वास हुआ कि गांधीजी जो बोलते हैं, वही अर्थ उनके मन में होता है। उन्होंने तप करके शब्द की प्रतिष्ठा बढ़ायी, कायम की।

वापस खींचने की असाधारण शक्ति

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं
कर्तोर् विततं सं जभार

वेद में ऋषि कहता है कि सूर्य की महिमा इसलिए है कि संध्या के समय वह अपनी फैलाया हुआ किरण-जाल समेट लेता है। उसी प्रकार हममें भी अपने सभी कामों को समेट लेने की शक्ति होनी चाहिए।

लेकिन हमने देखा कि प्रवाहपतित नेताओं और कार्यकर्ताओं में अपने को वापस खींच लेने की शक्ति नहीं होती। वे बिखरे हुए होते हैं। वापस स्वस्थान में नहीं आ सकते। उनको कर्म के पीछे जाना पड़ता है। वे 'कर्म-स्वामी' नहीं रहते, 'कर्म-दास' ही हो जाते हैं। आंदोलन शुरू करना तो आसान होता है, पर उसे वापस खींचना कोई आसान और साधारण बात नहीं। बापू में वापस खींचने की असाधारण शक्ति थी। वे आंदोलन शुरू भी करते थे और उसे वापस खींच भी सकते थे। जैसे सूर्य अपनी किरणों को खोल देता है और वापस खींच भी लेता है।

समाज-उत्थान की आधारशिला

बापू ने हमारे सामने कितनी ही ऐसी बातें पेश कीं, जो केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में आती हैं, दूसरे क्षेत्र में नहीं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि पंच यमों के साथ उन्होंने दूसरी कई बातें जोड़कर एकादश व्रत हमारे सामने रखे। यह कल्पना कोई नयी कल्पना नहीं है, पुरानी ही है। लेकिन समाज-सेवा के लिए व्रत-पालन जरूरी है, यह बात बापू ने सर्वप्रथम कही। उन्होंने कहा कि, ''सत्य, अहिंसा आदि बुनियादी चीजें हैं और उन्हीं की आधारशिला पर समाज का उत्थान किया जा सकता है। समाज-सेवा के लिए वे अनिवार्य हैं और जनसेवा की वह कसौटी भी है। इनके बिना समाज-सेवा नहीं हो सकती, बल्कि अ-सेवा होगी।'' उन्होंने यहां तक कह दिया कि, ''सत्य और स्वराज्य दोनों में से कोई एक पसंद करना हो, तो मैं स्वराज्य को छोड़कर सत्य का स्वीकार करूंगा।'' यह बात उन्होंने उस युग में कही, जबकि स्वराज्य की भूख तीव्रतम थी। इसमें उनकी प्रतिभा का दर्शन होता है। ❑

वर्तमान युग के 'व्यास' विनोबा

❑ कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

''*विनोबा का प्रभाव आज नहीं, वर्षों के बाद लोग जानेंगे।''* स्व. महादेव भाई के विनोबा के बारे में सन् 1940 में कहे गये ये शब्द आज भी उतने ही सही हैं। आज जब विनोबा का विराट दर्शन हो रहा है, तब भी क्या हम उन्हें पहचान पाये हैं? इस रूप को पहचानने के लिए तो दिव्य-चक्षु चाहिए न! अणुयुग ने वह दिव्यदृष्टि मनुष्य के लिए तो सुलभ कर दी है, किन्तु अभी उसकी बुद्धि पर मोह का (अपने भौतिक और आत्मिक के अतीत के मोह का) सोने का पर्दा पड़ा है, जिसे हटाकर सत्य-दर्शन करने में मनुष्य असमर्थ है। हमारी आज की आकांक्षाएं तो वही पुरानी हैं—संग्रह की, सत्ता की और सुख की। जब कि विज्ञान ने साफ कर दिया है कि अब हमें नयी आकांक्षाओं का सहारा लेना होगा, अपने को बदलना होगा। पर हम तथाकथित विज्ञान के अंध-विश्वास में पड़कर 'विज्ञान' की इस सही आवाज को नहीं सुन पा रहे हैं। विनोबा हमें यही सुनाने का प्रयास कर रहे हैं। गांधीजी भारत की स्वतंत्रता के निमित्त जिस स्वराज्य के लिए जूझ रहे थे, विनोबा उस संग्राम के जीवित प्रतीक बन गये हैं।

व्यक्तित्व की महत्ता का आधार

यह सही है कि भूदान-ग्रामदान के रूप में विनोबा ने देश और दुनिया के सामने मनुष्य की कुछ मौलिक समस्याओं को हल करने की एक कारगर और सफल योजना रखी है और बिना किसी परम्परागत माध्यम (सत्ता या दंड) की मदद के लाखों एकड़ भूमि का भूमिहीनों में वितरण करा देना, हजारों-लाखों गांवों को सामूहिक रूप से सम्पत्ति के परम्परागत मूल्यों को बदलने के लिए राजी कर लेना आज के संसार में एक चमत्कारिक घटना ही कही जायेगी। यह होने से आज गांधी अपने जीवनकाल से भी अधिक गहराई और तीव्रता के साथ याद किये जा रहे हैं ओर ऐसा बहुत कम महापुरुषों के साथ होता है। आमतौर पर आदमी मृत्यु के बाद भुला दिये जाते हैं। किन्तु गांधी के साथ ऐसा नहीं हुआ। इसका कारण भी विनोबा ही है। गांधीजी के बाद देश की बागडोर (यानी राजनीतिक सत्ता) जिन लोगों के हाथ में आयी वे सब गांधीजी के द्वारा ही पाले-पोसे गये थे और उनसे यह आशा की गयी थी कि वे गांधीजी के संदेश को क्रियान्वित करेंगे। किन्तु पिछले कई सालों में इस देश में सत्ताधारियों (दलों और व्यक्तियों) ने जिस ढंग से काम किया, उससे विश्व में और देश में गांधीजी की तस्वीर न केवल धुँधली ही हुई है, वरन् विकृत भी हुई है। किन्तु उनके इन प्रयत्नों से गांधी का कोई नुकसान नहीं हुआ है। हां, देश का बहुत नुकसान हुआ है। किन्तु इस मीठे षड्यंत्र (गांधी को धीमे, चुपचाप किन्तु सुनियोजित ढंग से समाप्त करने का सत्ताधारियों का प्रयत्न) से गांधी को बचा ले जाने का सारा श्रेय विनोबा को दिया जा सकता है। यह विनोबा का भारत और विश्व पर बहुत बड़ा उपकार है।

आध्यात्मिक वीरता का दर्शन

विनोबा की दूसरी बात जो विश्व को आगे अनेक युगों तक चिन्तन में डाले रखेगी वह उनका *'धर्म का वैज्ञानिकीकरण'* या *'विज्ञान का आध्यात्मीकरण'* का सिद्धान्त है। पश्चिम के एक बहुत बड़े जीव-वैज्ञानिक *ली काम्प्टे डी नोवी* ने बहुत पहले अपने प्रसिद्ध ग्रंथ *'ह्युमन डेस्टिनी'* (मनुष्य का भाग्य) में यही बात वैज्ञानिक तर्क के साथ पेश की थी कि मानव के आरोहण का मकसद मानव-मुक्ति है। मानव-मुक्ति से उसका मतलब मनुष्य के अपने पशुत्व से ऊपर उठकर मानवत्व के स्तर तक जाने में सफल होने से था। आज का विज्ञान इस बात को अनेक तरीके से बता रहा है और विनोबा ने यही बात जिस ढंग से कही है वह इस बारे में अभी तक कही गयी सभी बातों से नितान्त मौलिक और आकर्षक है।

विज्ञान और आत्मज्ञान का समन्वय

यह विचार विनोबा की सवोत्कृष्ट देन कही जायेगी। जवाहरलालजी पर उनकी इस बात का बहुत असर हुआ था और कौन जानता है कि वे जीवित होते तो इस ओर देश को न ले जाते? धर्म अब गत वस्तु हो गयी है। उसमें अब कोई दम नहीं रहा। असल में तो उसमें कभी भी दम नहीं था, पर अब तो उसकी बहकाने की शक्ति भी चुक गयी है। *धर्म एक प्रकार का सिवार था, जिसने उसी स्वच्छ जल को आवृत्त कर लिया था, जिसमें वह पैदा हुआ। वह स्वच्छ जल अध्यात्म था। अब विनोबा ने आधुनिक भारत में पहली बार हिम्मत करके इस व्यर्थ सिवार को हटाकर जल की स्वच्छता की ओर हमारा ध्यान खींचा है।* शायद यह कहा जा सकता है कि शंकराचार्य के बाद भारत में ऐसी आध्यात्मिक वीरता का दर्शन केवल विनोबा में ही हो सका है।

वर्तमान युग में व्यास

विनोबा शायद इस मानी में भी पहले भारतीय मनीषी हैं, जिन्होंने हिन्दूधर्म के अलावा देश के दूसरे धर्मों के मूल ग्रंथों और उनकी मूल भावनाओं में गहरी पैठ लगायी है और उनके मौलिक विचारों को लेकर उन्हें नये ढंग से लिखने की हिम्मत की है। विनोबा का *'कुरान-सार'* आने वाले अनेक युगों तक इस्लाम के ही अनुयायियों के लिए नहीं, प्रत्युत दूसरे लोगों के लिए भी प्रेरणा और शोध तथा मनन और श्रद्धा का कारण बना रहेगा। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के अनेक मौलवियों और विद्वानों ने इसे 'इस्लाम में विनोबा की उत्कृष्ट देन' के रूप में स्वीकार किया है। उसी तरह से उनका *'ख्रिस्तधर्म सार'* है। ईसाई धर्म

का मर्म और निचोड़ इसमें आ गया है। उन असंख्य गैर-ईसाइयों के लिए, जिन्होंने कभी नये या पुराने टेस्टामेंट का नाम तक नहीं सुना, जो जरा भी अंग्रेजी नहीं जानते, यह पुस्तक ईसाई धर्म को समझने के लिए कुंजी का काम देगा। कहा नहीं जा सकता कि किसी अन्य गैर ईसाई ने कभी ईसाई धर्म की इतनी मूल्यवान सेवा की हो। 'जपुजी' तो भारत का अपना ही ग्रंथ है, किन्तु अब तक वह भी धर्म की कैद में बंद था। विनोबा ने उसे भी वहां से मुक्त किया और आज वह सर्वसाधारण के लिए सरल नागरिक भाषा में सुलभ है। इनके अलावा भारत की विभिन्न भाषाओं में उत्तम ग्रंथों को खोज-खोजकर उन्हें नवीन आयाम प्रदान कर फिर से ताजा और प्रेरणादायी बना दिया है। आने वाले समय में भारत के मानस पर विनोबा के इस ज्ञानयज्ञ का असर हुए बिना क्या रह सकेगा?

जब हम भारत के प्राचीन ऋषियों और संतों का स्मरण करते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत के इतिहास में एकमात्र अमिट कार्य यदि कोई हुआ है तो वह इन ऋषियों और संतों के द्वारा किया गया ज्ञानयज्ञ ही रहा है। उसने ही भारत को आज तक न केवल जिन्दा रखा है, वरन् सक्रिय भी रखा है। अब तो विज्ञान सर्वसुलभ हो गया है, ऐसी हालत में विनोबा का यह ज्ञानयज्ञ भारत के लिए ही नहीं, संसार के लिए भी मुक्तिदाता सिद्ध होगा। मालूम नहीं, भारत के इतिहास में इतनी अधिक प्रतिभा और जिज्ञासा तथा श्रद्धा व श्रम का पुंज कोई विनोबा जैसा पुरुष दूसरा हुआ या नहीं, किन्तु यह बात अवश्य कही जा सकती है कि विनोबा की प्रतिभा महाभारत रचयिता व्यास का स्मरण कराती है। जिन लोगों ने विनोबा को पढ़ने से भी अधिक उन्हें सुना है, वे मेरी बात का समर्थन करेंगे। समन्वय के जिस यज्ञ को किसी सुदूर अतीत में महर्षि अगस्त्य ने आरम्भ किया था, विनोबा उसकी अब तक की फलश्रुति हैं।

संगठन और क्रांति

आधुनिक समाजशास्त्र में संगठन-संबंधी यह प्रसिद्ध सिद्धांत प्रचलित है कि संगठन उसके सदस्यों के हित के अनुरूप हो, तभी तक वह रह सकता है। किन्तु गांधीजी मानते थे कि संगठन या संस्था का हित-जैसी कोई चीज नहीं होती है। जो होता है वह व्यक्ति (individual) और व्यक्ति-हित संगठन या संस्था से कहीं अधिक व्यापक होता है। अतः संगठन का स्वरूप और उसके और सदस्यों के हितों में अनुरूपता के बजाय व्यापक सामाजिक हित पर आधारित होना चाहिए। इसीलिए उन्होंने संगठन को अहिंसा की कसौटी कहा था। विनोबा ने इस विचार को और परिपुष्ट किया है, और इसी संदर्भ में कहा है कि संगठन 'किये' नहीं जाते बल्कि 'होते' हैं।

वे इस बात को मानते हैं कि संगठन व्यापक सामाजिक हितों की दृष्टि से बनाये जाते हैं और इसीलिए उन्हें उसी व्यापक हित में विघटित भी कर देना चाहिए। व्यापक हित यानी सामुदायिक हित। और संगठन या संस्था के हित का अर्थ है समूहों अथवा व्यक्तियों के हित। समूहों या व्यक्तियों में अनेक बार हित-विरोध होता है, किन्तु समुदाय में हित-विरोध का सवाल ही नहीं होता। समूह में द्वैत प्रधान होता है और समुदाय में अद्वैत प्रधान होता है। तभी तो वह समुदाय कहलाता है। इसी आधार पर *विनोबा ने संगठनों को दो भागों में बांटा है। एक तो शक्ति या दबाव पर आधारित संगठन, जैसे सैनिक या राजनैतिक संगठन, और दूसरे, प्रेम पर आधारित संगठन, जैसे—परिवार। अब यह बात आधुनिक समाजशास्त्रीय चिन्तन में नितान्त नवीन है कि संगठनों का उपयोग सदस्यों के हितों के लिए नहीं होना चाहिए, वरन् उन्हें व्यापक सामाजिक हित को सामने रखकर चलना चाहिए। असल में यह विचार भयानक और दोषपूर्ण है कि संगठन को सदस्यों का हित सम्पादन करना चाहिए। इसी से भ्रष्टाचार, शोषण, गुटबंदी और नौकरशाही तथा राज्यवाद पनपता है।* यह सही है कि गांधीजी ने अनेक संगठन खड़े किये थे, पर वे क्रांति के वाहक थे और इसलिए वे गौण बने रहे। मुख्य तो क्रांति थी। *अब यह बात बदल गयी है और आज तो लोगों के लिए संगठन प्रधान हो गये हैं और यह माना जाता है कि वे 'क्रांति के लिए' काम करेंगे, क्योंकि उससे उन्हें लाभ होगा। आज 'संगठन के हित के लिए' लोग क्रांति चाहते हैं, पर गांधी-विनोबा समाज-हित के लिए, क्रांति जिसका एक कदम है, संगठन बनाने को कहते हैं।*

सर्वोदय के अनेक संगठनों और संस्थानों को यदि यह बात समझ में आ जाती तो वे विनोबा से इतने पीछे नहीं रह जातीं। हमारी इस नयी पीढ़ी के लिए, जिसे गांधीजी को देखने और उनकी कार्यपद्धति सीखने-समझने का कोई अवसर नहीं मिला, विनोबा की यह देन अत्यन्त मूल्यवान है। विनोबा का ही असर है कि आज अनेक लोगों में संगठनों के प्रति कोई रुचि नहीं है। यद्यपि अभी तो परम्परागत संगठन-प्रणाली का ही बोलबाला है। पर यह निश्चित है कि संगठनों और संस्थाओं को चन्द सदस्यों के हित-साधन या आत्म-प्रचार का माध्यम बनाने के दुश्चक्र से निकल बाहर आना होगा, नहीं तो आने वाली क्रांति में वे मिट जायेंगे। गांधी की ही तरह विनोबा में भी अनेक संगठन बनाने पर भी उनसे अलिप्त रहने की कला सधी है और सर्वोदय को मानने वालों के लिए यह एक सीख है।

स्थायी और स्वाभाविक परिवर्तन का माध्यम

विनोबा अराजवादी दार्शनिक हैं। वे मानते हैं कि राज्य मनुष्य की असभ्यता और आदिम अवस्था का प्रतीक है।सभ्य बनने के लिए 'राज्य का स्थानापन्न' खोजना आवश्यक है और विनोबा ने समुदाय को वह स्थान दिया है। यहां पर साम्यवादियों से उनका बुनियादी मतभेद है। असल में साम्यवादी राजनैतिक दर्शन के क्षेत्र में सबसे कमजोर प्रतिभा वाले और लाचार लोग हैं। वे आज भी राज्य को समाज का पर्याय मानते हैं और मजा यह है कि उनकी यह बचकाना मान्यता को अन्य सभी तथाकथित समाजवादी लोगों ने भी स्वीकार किया है। इसी कारण से ये सब लोग

सामाजिक परिवर्तन के लिए राज्य को माध्यम मानते हैं जब कि सत्य यह है कि राज्य हमेशा ही अपरिवर्तनवादी होता है और यही कारण है कि राज्य के जन्मकाल से आज तक नागरिक और राज्य में संघर्ष (चाहे वह राजतंत्रवादी या साम्यवादी ही क्यों न हो) चला आ रहा है। किन्तु गांधीजी मानते थे कि परिवर्तन तो सामाजिक अभिक्रम से होता है। यह सामाजिक अभिक्रम मनुष्य की सहज और बुनियादी सामाजिक इकाइयों के माध्यम से जाग्रत होता है। हम जानते हैं कि सामाजिक इतिहास में परिवार, विवाह, गोत्र आदि सामाजिक इकाइयों ने कितने बुनियादी परिवर्तन किये, किन्तु राज्य आज तक कोई भी मौलिक परिवर्तन नहीं कर सका।

परिवर्तन के लिए राज्य की ओर देखने वाले राज्यवादी (यानी लोकविरोधी) होते हैं और इसलिए दल या समूह बनाकर अभिजात या नेता के नाम पर परिवर्तन की वकालत करते हैं। किन्तु यह समझने की बात है कि दल या ऐसे ही तथाकथित संगठन कृत्रिम और अस्थायी होते हैं, किन्तु समुदाय एक स्थायी तथा स्वाभाविक प्रत्यय होता है। किसी भी अस्थायी और कृत्रिम माध्यम से कोई स्थायी और स्वाभाविक परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। यही कारण है कि गांधी ने ग्राम समुदायों पर इतना जोर दिया था और विनोबा ग्रामदान के माध्यम से उन्हीं ग्राम समुदायों को पुनः जीवन देने का प्रयत्न करते रहे। यदि एक बार गांव के लोग यह समझ जाते हैं कि बिना सरकार के भी वे गांव का काम चला सकते हैं, तो फिर राज्य की मौत का बिगुल बज गया मानिए। यह आधुनिक विश्व में नितांत नयी बात है कि राज्य को समाप्त करने का काम समुदाय ने हाथ में लिया हो। आज तक चन्द लोगों और संगठनों ने ऐसी आवाज अवश्य उठायी थी, किन्तु वे सब कल्पनावादी बनकर रह गये। उन सबका अंत राज्यवाद में परिणति से ही हुआ है। साम्यवादी दुर्घटना इसकी ताजी मिसाल है। विनोबा की इस पद्धति में देर लग सकती है किन्तु कीमिया लोगों के हाथ आ गया है। यह न्यूटन के आविष्कार से कम महत्त्व की घटना नहीं है।

विनोबा ने तप, विद्या, दान, ब्रह्मचर्य आदि व्यक्तिगत नैतिक मूल्यों का चमत्कारिक समाजीकरण किया है, क्योंकि उनके समान समाज में डूबा इस स्तर का व्यक्ति मिलना कठिन है। वे भारत की शताब्दियों से चली आ रही अखण्ड परम्परा, प्रतिभा और तपस्या का मूर्तिमान स्मरण हैं। ऐसे ऋषि को शत-शत प्रणाम! ❑

स्वराज्य के बाद अब साम्ययोग यानी सर्वोदय

❑ विनोबा

हमारे सामने एक बहुत बड़ी चुनौती है। भारत की आजादी की लड़ाई इस ढंग से लड़ी गयी कि सारी दुनिया का ध्यान भारत की ओर खींचा गया और दुनिया में भारत की प्रतिष्ठा मिली। हम उस प्रतिष्ठा को बढ़ाना चाहते हैं और हमारे सामने नया समाज बनाने का काम है। हम हमारे समाज को नैतिक समाज बनाना चाहते हैं, जिसमें हर एक व्यक्ति अपनी शक्ति समाज को समर्पित करे।

हर एक युग के लिए नये आदर्शन और नये कार्य मिलते रहते हैं। शास्त्रों में कहा है— *'अचितं ब्रह्म जुजुषः युवानः'*। युवा ऐसे ब्रह्म का चिन्तन करते हैं, जिसका चिन्तन पहले कभी नहीं हुआ था। नये युग के लिए नया ब्रह्म। जिस समाज के सामने नया ब्रह्म नहीं है, वह क्षीण होता है। *पहले हमारे सामने 'स्वराज्य' का ब्रह्म था, अब हमारे सामने 'सर्वोदय' का ब्रह्म है। हमें इतिहास पढ़ना नहीं, बनाना है।*

सर्वोदय एक अर्थघन शब्द है। उसमें क्रांतिकारिता भी है। सर्व का उदय तब होता है, जब समाज में पारस्परिक हितविरोध न हो। लेकिन आज ऐसा कृत्रिम जीवन बन गया है कि उसमें परस्पर हित-विरोध खड़ा हो गया है। परिवार में ऐसा हित-विरोध नहीं होता है। परिवार का यह न्याय समाज पर लागू करना, यही 'सर्वोदय' है। भारत में तो शब्द चलता है, सर्वभूतहिते रताः। यहां भूतमात्र के हित की बात सोची गयी। लेकिन मानव का कार्य तो मानव से ही शुरू होगा, इसलिए कम-से-कम मानव समाज में समान हित स्थापित हो। हमारे संस्कृत ग्रंथ में राग-द्वेषरहित व्यक्ति के लिए 'सर्वोदय तीर्थ' शब्द इस्तेमाल किया गया है।

साम्ययोग में धर्म-विचार, अर्थ-विचार और विज्ञान-विचार, तीनों इकट्ठा हुए हैं। धर्म-विचार करुणा सिखाता है, अर्थ-विचार अर्थोत्पादन बढ़ाने की बात सिखाता है और विज्ञान सिखाता है सहयोग ही से शक्ति पैदा होती है। विज्ञान शक्ति की, अर्थशास्त्र सम्पत्ति की, और धर्म बुद्धि की शोध करता है। ये तीनों चीजें साम्ययोग में हैं।

एक-एक जमाने की एक-एक प्यास होती है। इस जमाने की प्यास है साम्ययोग। नौकर को कायम नौकर रखकर कोई मालिक भले ही उसे सब तरह से सुख पहुंचाए, पर उतने से इस जमाने का समाधान नहीं हो सकता। मालिक अब नौकर को अपने आधे सिंहासन पर बिठायेगा, तभी जमाने का समाधान होगा। एक जमाने में दास्यभक्ति अच्छी मालूम होती थी, परन्तु आज के जमाने को भूख है, सख्य-भक्ति की!

सारी दुनिया में नया युग आ रहा है। इस युग में शिवो भूत्वा शिवं यजेत् ही करना होगा। भगवान शिव अपने भक्तों को शिव बनाकर प्रेम से अपनी सत्ता चलाते हैं। प्रेम की सत्ता एक ऐसी सत्ता है, जो किसी सम्राट के हाथ में भी नहीं होगी।

(साम्ययोग का दर्शन, पृ. 34-36)

जयप्रकाश : जिन्होंने असफलता को सफलता का सोपान माना

❑ दादा धर्माधिकारी

जयप्रकाश नारायण की एक छोटी-सी पुस्तिका है—''पालिटी ऑफ द पीपुल...। इसका अनुवाद लोकनीति शब्द से किया जाता है। श्री चिंतामणिराव देशमुख ने एक बार कहा था कि यह जयप्रकाश भारतीय लोकात्मा का अभिभावक है, प्रहरी है। आज बड़े खेद के साथ मुझे यह कहना पड़ता है कि ये 'पीपुल ऑफ इन्डिया' है कहाँ? 'आर वी ए पीपुल?' इस सवाल का जवाब आप अपने-अपने मन में खोजिए। मुझे इसका जवाब नहीं चाहिए। मैं भी खोज ही रहा हूं। इसी खोज में जयप्रकाश नारायण रहे। इसी खोज में उन्होंने सारा पराक्रम किया, और इसी खोज में उनकी मृत्यु हुई।

जयप्रकाश नारायण की दो विशेषताएं 'यूनीक', अनुपम हैं। पहली विशेषता यह है कि यह मनुष्य कभी उम्मीदवार नहीं हुआ। डेमोक्रेसी में उम्मीदवारी के लिए स्थान है। लेकिन यह आदमी कभी सत्ता का उम्मीदवार नहीं रहा। इतने बड़े कद का आदमी कभी उम्मीदवार न रहा हो, इसकी मिसाल इस देश में महात्मा गांधी के सिवा और दूसरी नहीं है।

दूसरी एक विशेषता जयप्रकाश में थी कि वह आदमी असफलता से कभी नहीं डरा। असफलताओं की परम्परा को उसने सफलता का सोपान माना। असफलता का आलिंगन किया। यह उनकी एक अनन्यतम विशेषता थी, जो दूसरी जगह शायद ही कहीं पायी जाती है। इसलिए उस मनुष्य के साथ गलती करने में भी आनन्द आता था। ऐसे प्रयत्न, जिसमें असफलता का खतरा रहता था, सफलता की आकांक्षा रहती थी, वे स्वयं करते रहे, और उनके साथ इस तरह की कोशिश में जुट जाना मेरे जैसे अनेक लोगों के लिए अदभुत आनन्द का विषय था।

आज उनकी स्मृति के इस अवसर पर एक दूसरे पहलू की तरफ मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं।

भारतीय राष्ट्र आज बिखर रहा है। इसके ठीकरे-ठीकरे हो रहे हैं। फुटपाथ पर बैठे हुए दुकानदार की दुकान में अनेक चीजों का जैसे बिखराव होता है, उसी तरह से इस देश में अनेक जातियों का, अनेक सम्प्रदायों का एक बिखराव है। ''कम्युनिटी'' कहीं है नहीं। राष्ट्र का पता नहीं है।

मैं आरक्षण के आंदोलन के वक्त अहमदाबाद गया। मैंने देखा कि अहमदाबाद शहर में नागरिक कहीं है ही नहीं। वह भीड़ में खो गया है, संख्या में खो गया है।

भीड़ और लोक के बीच एक अंतर है। भीड़ किसे कहते हैं—जहां हजारों सिर होते हैं, लेकिन दिमाग नहीं होता। हजारों सीने होते हैं लेकिन दिल नहीं होता। इस तरफ की भीड़ एक तरफ है। उस भीड़ के हाथ में कभी डंडा है, कभी पत्थर है। दूसरी तरफ पुलिस का सिपाही है, जिसका डंडा बेकार हो गया है।

मैं उत्तर प्रदेश, बिहार में जाता हूं, वहां पुलिस का सिपाही कहता है कि हुजूर, हम कहीं के नहीं रह गये। डंडा हमारे पास है, गुंडों के पास है। और ये गुंडे परम्परागत गुंडे नहीं हैं। इनमें कॉलेज के विद्यार्थी भी हैं, पढ़े-लिखे बाबू लोग भी हैं। एक 'स्ट्रीट कार्नर सोसाइटी', चौराहे पर उपद्रव करने वालों की संख्या इस देश में बढ़ती जा रही है। आये दिन मुट्ठी भर लोग बम्बई का सारा व्यवहार बंद कर सकते हैं। नागरिक आतंक में भयभीत हो जाता है। कहा है आपकी 'सिविल लिबर्टी'?'

विद्यार्थियों का आंदोलन चल रहा है। जो विद्यार्थी कॉलेज में जाना चाहेगा उसे पिटने का डर है। गुजरात में विद्यार्थियों ने मुझसे कहा कि हमने कभी हाथ नहीं उठाया, कोई हिंसा नहीं की। फिर तुम्हारे ही साथियों में यह डर कहां से आया? मैंने उनसे कहा कि आपके मुख्यमंत्री ने भी कभी किसी को चपत नहीं मारी इस आंदोलन में, फिर पुलिस के अत्याचार और ज्यादतियां कहां से आयीं?

यह सरकारी और गैर-सरकारी हिंसा है। यह हिंसा है, प्रतिकार नहीं है। ये लोगों का आंदोलन नहीं है, यह 'टेररिज्म' है। अनियंत्रित हिंसा है, 'रायट' है। दंगा है दंगे से कोई समाज-परिवर्तन नहीं होता। 'इंसरेक्शन' सशस्त्र क्रांति नहीं है। युद्ध अलग चीज है, दंगा अलग चीज है। दंगे में अमानुषिकता होती है, हृदयहीन क्रूरता होती है।

मैंने गुजरात में देखा कि सरकार की सेंसरशिप एक तरफ है, भीड़ की सेंसरशिप दूसरी तरफ है। संपादक पीटे जाते हैं, उनके दफ्तर जलाये जाते हैं। लड़के जाकर उनको धमकाते हैं।

इस देश में एक 'कास्ट-वार' सुलग रही है, और ये बाबू लोग 'काउंटर रिवोल्यूशनरी' हो रहे हैं। लोक किसे कहेंगे

आप? बन्दूक सिपाही के हाथ में है, पत्थर भी नहीं है, बंदूक भी नहीं है, वह नागरिक कहां है? वह नागरिक अगर अस्पताल भी जाना चाहे तो नहीं जा सकता है। रास्ता रोक लिया जाता है, गाड़ी पर पत्थर फेंके जाते हैं। ये सारे लोक-आंदोलन ऐसे आंदोलन हैं, जिनमें लोक का कहीं पता ही नहीं है, नागरिक का कहीं पता ही नहीं है। क्या जे. पी. के साथ रहे हुए तरुण इसका प्रतिकार कर सकते हैं? इसके लिए बहुत बड़ी वीरता की आवश्यकता है। सिपाही से लड़ना आसान है। भीड़ से लड़ने में उससे हजार गुना ज्यादा बहादुरी की जरूरत है। ये गुंडा आपको रास्ते में पीट सकता है। पुलिस वालों ने मुझसे कहा कि हुजूर अब बंदूक के सिवा कुछ नहीं रह गया है। बंदूक चलाते हैं तो 'इनक्वायरी' होती है, नहीं चलाते हैं तो बाजार में पिटते हैं।

ट्रेन में लड़कों की भीड़ आती है तो वे स्त्री-बच्चों के साथ, बैठे हुए नागरिकों के साथ कैसा बर्ताव करते हैं?

'रैडिकल ह्यूमैनिस्ट' पत्रिका का एक अंक पढ़ रहा था। अहमदाबाद पर एक लेख था। उसमें लिखा था कि अब पुलिस को नहीं, बार्डर सिक्यूरिटी फोर्स को भेजना चाहिए। क्यों? पुलिस में भी सवर्ण और अवर्ण हैं। अगर बम्बई में दंगा होता है तो जहां गुजराती लोग रहते हैं वहां गुजराती पुलिस भेजो, जहां मराठी लोग रहते हैं, वहां मराठी पुलिस भेजो। इसका मतलब क्या हुआ? भारतवर्ष में अगर दंगा होता है तो बाहर से पुलिस बुलाओ, दूसरे देशों से! यह राष्ट्रीयता का लक्षण है?

उस लेख में लिखा था कि सारी 'माइनारिटीज' को एक करो—अछूत से लेकर मुसलमान तक। कितनी भयानक चीज लिखी। इस देश में कितने तरह की 'माइनारिटी' है? जो साम्प्रदायिक 'माइना-रिटी' हैं—मुसलमान, सिख, यहूदी—ये तो रहेंगी ही। ये सुरक्षित और स्वतंत्र रहनी चाहिए। आदिवासी है—उसकी एक अपनी परम्परा है, संस्कृति है, ऐसा कहा जाता है। अछूत ऐसी माइनारिटी है, जिसे हम रहने नहीं देना चाहते हैं। इस देश में अछूत कोई नहीं रहेगा, यही हमारी प्रतिज्ञा है। आज वह अछूत अपने को असुरक्षित अनुभव करता है। उसके संरक्षण के सरकारी स्तर पर जो प्रयत्न हुए, सवर्ण उनका विरोध कर रहा है जगह-जगह। *यह कैसी 'कम्युनिटी' है? कहां है वह राष्ट्र जिसकी 'सिविल लिबर्टी' के लिए जयप्रकाश लगे रहे और आप कोशिश कर रहे हैं?*

मैं डर गया हूं, घबरा गया हूं। मुझे ऐसा लग रहा है कि हम अराजकता की तरफ जा

रहे हैं। और अराजकता में याद रखिये कि चौराहे पर एक 'डिक्टेटर' होगा। जो जिस मुहल्ले का गुंडा होगा या गुंडे होंगे, उनकी वहां सत्ता होगी, फिर वे किसी जाति के हों, किसी सम्प्रदाय के हों। इसका प्रतिकार करना है, और जे. पी. का नाम लेने वाले तरुणों को करना है। नहीं तो, इस देश में अब 'सिविल लिबर्टी' रहेगी नहीं, क्योंकि कोई 'सिविल लाइफ' ही नहीं रहेगी।

इस देश का नागरिक, जो 'डेमोक्रेसी' में 'सॉवरेन' है, वह कायर है, दब्बू है। लोकतंत्र बहुमत का राज्य है, बहुसंख्या का नहीं। यहां किसी की बहुसंख्या है ही नहीं।

हिन्दुओं की बहुसंख्या एक 'मिथ' है, एक कल्पना है। कहां है वह 'हिन्दू'? उत्तर प्रदेश में छः जातियां हैं, जिनकी सत्ता है। महाराष्ट्र में भी वही हाल है। ये भाषिक राज्य असल में जातीय राज्य हैं। हर गांव में, हर नगर में जातिस्थान है। हर क्षेत्र में भाषिस्तान है, और इनकी संतान पाकिस्तान है। यह कहीं बाहर से आयी हुई चीज नहीं है, हमारे भीतर से पैदा हुई है। इस देश की परम्परा के गर्भ से पैदा हुई है। आज वह समय आ गया है कि समय रहते अगर इस देश का तरुण नागरिक नहीं जागेगा तो नागरिकता भी खो जायेगी और उसे खोजने वाले भी नहीं रह जायेंगे।

मुझे दुःख इस बात का है कि आज इस देश का पढ़ा-लिखा तरुण प्रतिगामी हो गया है, 'रिएक्शनरी' हो गया है। सारे साम्प्रदायिक झगड़े उसके नेतृत्व में हो रहे हैं। गुजरात में मराठी न हों, महाराष्ट्र में गुजराती न हों, बेलगाँव में कन्नड़ न हों और मराठी न हो, कृष्णा का पानी कौन-सी भाषा वाला पीये, गंगा में कौन-सी भाषा वाला नहाये, यह देश के तरुण नागरिक की भूमिका है। आज नहीं सोचेंगे तो फिर कभी सोच पायेंगे? रहना आपको है, तरुणों को है। मेरे दिन तो लद गये हैं। मुझे आप परलोकवासी मान सकते हैं। लेकिन जिस लोक में आप रहना चाहते हैं, उस लोक में ये 'माइनारिटीज' रहेंगी और इनका संरक्षण करना होगा। मैं समझता हूं कि पारसी माइनारिटी इस देश में सबसे अधिक राष्ट्रीय और देशभक्त है। यहूदी हैं जिन्होंने कभी अलग भाषा का दावा नहीं किया। आपके लोक में ये सुरक्षित रहेंगे, स्वतंत्र रहेंगे, इन दंगों में ये फल-फूल सकेंगे?'

'रैडिकल ह्यूमैनिस्ट' के उस लेख में कहा था कि इन सारी 'माइनारिटीज' में 'मुसलमान माइनारिटी' और अछूतों की 'माइनारिटी' क्या समान हैं? इनकी भूमिका समान हैं? भिन्न भूमिका है। अछूतों की 'माइनारिटी' नहीं रहना चाहिए, यह हमारी कोशिश है, यह इस देश का संकल्प है। बहुत बड़ा 'कंफ्यूजन' है मित्रो, विचारों की उलझन है। दिमाग साफ करने की आवश्यकता है। ❑

'रेडिकल सर्वोदयी' संपूर्ण क्रांति को बढ़ायेंगे

❑ आचार्य राममूर्ति

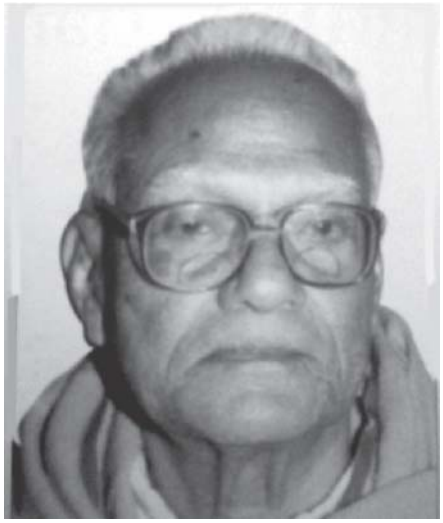

जेपी के चिन्तन में एक ऐसी गतिशीलता थी, जो परिस्थिति के अनुसार उन्हें परिवर्तन की ओर मोड़ती रहती थी। दुख है कि उनकी संपूर्ण क्रांति को विनोबाजी द्वारा इस दृष्टि से देखा नहीं गया। इंदिराजी ने तो नहीं ही देखा। अगर जेपी की पहल को इस दृष्टि से दोनों ने देखा होता तो देश को एक नयी दिशा मिली होती, और लोकतंत्र की शक्ति पाकर राज्य और राष्ट्र दोनों शक्तिशाली हुए होते। निरंकुश शक्ति दिनोंदिन बढ़ती रही, और समाज का ह्रास नहीं रोका जा सका। जेपी ने अहिंसा को मूल्यनिष्ठ लोकतांत्रिक प्राक्रिया का रूप देने की कोशिश की ताकि अहिंसा लोकतंत्र के द्वारा राष्ट्रीय जीवन और विकास में घुल-मिल जाये, किन्तु वह नहीं हो सका। *अंत में जेपी को अपनी वसीयत 'रेडिकल सर्वोदय' के हाथों में छोड़कर जाना पड़ा। रेडिकल सर्वोदय केवल शब्द नहीं है, एक नया दर्शन है, जिसकी परतें समय के साथ खुलेंगी और उसका प्रकाश देश-विदेश तक फैलेगा। शायद तभी जेपी की 'विफलताओं की विरासत' सार्थक होगी।*

संपूर्ण क्रांति का पहला अध्याय, जितना जेपी जीते जी लिख सके, वही आगे के लिए हमारी पूंजी है। 1974-75 में जो कुछ हुआ, वह बहुत-कुछ उस समय की परिस्थिति से प्रभावित था। यों भी एक प्रारम्भिक अभ्यास था। चार सौ पैंसठ दिनों के अभियान में जितना हो सकता था हो गया। उंगली पकड़कर जेपी ने हमें 'जनता सरकार' तक पहुंचा दिया, तथा 'डबल फ्रंट स्ट्रैटेजी'—संसद ऊपर, जनता सरकार धरती पर—का मार्ग दिखाकर गये।

बीसवीं शताब्दी में समाज और क्रांति के जो दर्शन विकसित हुए उनकी विभिन्न धाराओं ने बीसवीं शताब्दी में हमें प्रभावित किया है। हमारी सोच बदली है, हमारे काम करने की पद्धति बदली है। लोकतंत्र एक समग्र दर्शन के रूप में उभरा है। *जिन मूल्यों के लिए कभी क्रांति की बात सोची जाती थी वे अब लोकतंत्र के दायरे के अंदर आ गये हैं। मानव-अधिकार, लिंग-समानता, सामाजिक न्याय, बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति, बालिग मताधिकार, राज्य के मुकाबिले नागरिक के अधिकारों के लिए संविधान में दी गयी गारंटी, अल्पसंख्यकों को संरक्षण, कानून का राज आदि विषय अब क्रांति के नहीं, लोकतंत्र के प्रश्न हैं। लोकतंत्र के क्रांतिकारी स्वरूप को निखारते जाने की चुनौती हमारे सामने है। जेपी ने उस चुनौती को पहचाना था,* इसलिए लोकतंत्र को 'प्राथमिकताओं में पहला स्थान' दिया था। लोकतंत्र परिस्थितियों के दबाव में, इस युग के प्रभाव में, स्वयं गतिशील होता जा रहा है।

संपूर्ण क्रांति के अगले अध्यायों को कौन लिखेगा? हर पीढ़ी अपना अध्याय लिखेगी। नियति की लेखनी कुछ लिखेगी, और लिखकर आगे बढ़ जायेगी। आरोहण की प्रक्रिया में कोई अंतिम अध्याय नहीं होगा।

जेपी ने संपूर्ण क्रांति को आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी 'रेडिकल सर्वोदय' को सौंपी है। और उसे यह कहकर परिभाषित किया है कि रेडिकल सर्वोदय परिवर्तननिष्ठ हो; केवल अच्छे काम करके संतोष न मान ले।

जीवन के मूल्य स्थायी हैं, सनातन हैं। काल के साथ उनके स्वरूप बदलते रहेंगे, किन्तु वे स्वयं अक्षुण्ण रहेंगे। रेडिकल सर्वोदय मूल्यों का वाहक होगा। उसकी शक्ति नैतिक होगी, राजनैतिक नहीं। वह लोकशक्ति को प्रेरित करेगा, स्वयं सत्ता से अलग रहेगा।

राजनैतिक शक्ति लोकनीति के अंतर्गत होगी। इसलिए उसे भी 'रेडिकल' होना होगा। रेडिकल सर्वोदय तथा रेडिकल लोकनीति के मोरचे अलग होंगे, किन्तु अभियान एक होगा। संपूर्ण क्रांति की दोहरी रणनीति होगी—नैतिक और लोकनैतिक (राजनैतिक)।

कार्यक्रम और कार्य-पद्धति, ये परिस्थिति-निरपेक्ष नहीं हो सकते; हमेशा परिस्थिति-सापेक्ष ही होंगे। गांधी के सत्य-अहिंसा के मूल्य, मार्क्स का वर्ग-संघर्ष, विनोबा का ग्रामस्वराज्य, जेपी का चतुर्विध संघर्ष, लोकतंत्र की सम्भावनाएं, इन सबका समन्वय संपूर्ण क्रांति की कार्य योजना में होगा। जेपी ने एक बार समन्वय का रास्ता दिखा दिया है। कोई कारण नहीं कि आने वाले दिनों में समन्वय का क्रम तथा रेडिकल शक्तियों के कदम आगे न बढ़ें। ❑

(जे. पी. की विरासत)

यक्ष-प्रश्न गतांक से आगे

'गांधी-विचार' क्रांति का साधन कैसे बने?

उनकी क्रांति के प्रतीक चरखा, झाड़ू और प्रार्थना कहां है?

❑ न्या. चन्द्रशेखर धर्माधिकारी

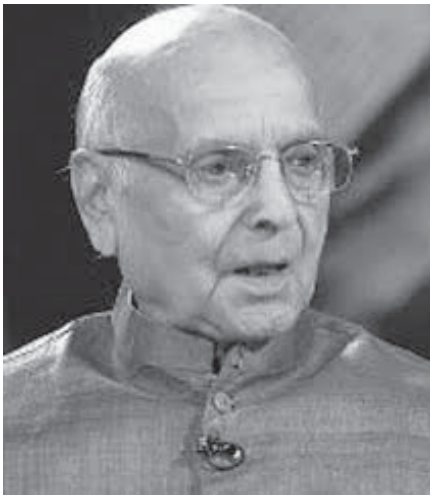

क्रांति का मतलब है संदर्भ-परिवर्तन, समाज की प्रस्थापित परिस्थिति में बदलाव यानी समाज-परिवर्तन, यह उसका साध्य है। इनसान का इनसान से जो संबंध है, उस आपसी संबंध में भी परिवर्तन होगा तभी तो सभी के जीवन विकास की दिशा में मार्गक्रमण करने की क्षमता निर्मित होगी। इसके लिए विधायक प्रतिभा की आवश्यकता है। प्रतिभा दो तरह की होती है, एक *'विधायक'* दूसरी *'विध्वंसक'*। विध्वंसक प्रतिभा के तीन लक्षण हैं। एक प्रतिशोध की भावना, दूसरी अन्य को या विरोधी को पराजित या समाप्त करने की भावना और तीसरी दूसरे के जीवन को ही मर्यादित करने की भावना। यह तीन भावना जहां होगी, वहां जीवन-मूल्यों को विकसित करने वाली क्रांति की भावना नहीं हो सकती। इसलिए गांधीजी ने कहा है कि *''संदर्भ-परिवर्तन के लिए वैयक्तिक आचरण की पूर्व तैयारी के रूप में हृदय-परिवर्तन की जरूरत है।''* लेकिन हृदय-परिवर्तन प्रथम खुद का और बाद में दूसरों का! और क्रांति के मूल्यों को सामाजिक जीवन में चरितार्थ करने की इच्छा हो, वह मूल्य प्रथमतः खुद के जीवन में प्रस्थापित और कार्यान्वित हो, यह जरूरी है। इसे ही गांधी ने *'विधायक वृत्ति'* कहा है। इसके लिए गांधी ने कार्यकर्ता के चारित्र्य पर जोर दिया और उसी के साथ तत्त्वनिष्ठा और लोकनिष्ठा पर जोर दिया। आत्मप्रत्यय और स्वतंत्र स्वत्व पर भी जोर दिया। सत्तानिष्ठा तथा संस्थानिष्ठा इन सभी निष्ठाओं को समाप्त या कलुषित कर देती है, ऐसा भी माना और इन सारों की शुरुआत खुद से हो, यह 'मूलमंत्र' भी दिया। 'कारपोरेशन हैज नो सोल', संस्था को आत्मा नहीं होती, इस अर्थ का प्रसिद्ध वाक्य है। जिसमें आत्मा नहीं होगी वह कार्य भी निःसत्त्व होगा ही होगा न? जिसके पास दूसरों को देने के लिए कोई भौतिक चीजें नहीं होतीं, उसके पास एक चीज होती है जिसका नाम है *'आत्मप्रत्यय'* और *'चारित्र्य'*, और इस चारित्र्य के व्यक्तिगत और सार्वजनिक ऐसे हिस्से नहीं होते। वह सम्पूर्ण चारित्र्य होता है। गांधी का वैशिष्ट्य था कि वे व्यक्ति या इनसान को मुख्य विभूति मानते थे। *'मैन इज मेजर ऑफ एवरीथिंग'*, यह उनकी भूमिका थी। सत्ता, सम्पत्ति, संस्था उनके लिए गौण थे। संस्था में भी सदस्यत्व से 'संबंध' और 'सौहार्द' उनके लिए अहम था।

विधायक कार्यक्रम व विधायक संस्था

गांधी द्वारा स्थापित विधायक संस्था के दो हेतु थे। एक था, परिवर्तन या क्रांति की प्रक्रिया को पोषक मनोवृत्ति विकसित हो, ऐसा मानस तैयार करना और दूसरा हेतु था कि क्रांति या आजादी के बाद समाज कैसा होगा, इसका चित्र ब्लूप्रिंट या नमूना प्रस्थापित करना, जिस मॉडल को लोग देख सकें और समझ सकें। आज तो दूसरी संस्थाओं के सारे दोष हमारी संस्थाओं में आ गये हैं। पद तथा सत्ता की आकांक्षा है और सम्पत्ति का मोह है, इसीलिए तो इन संस्थाओं में भी चुनाव की प्रक्रिया ने प्रवेश किया। हिसाब देखने के लिए ऑडिटर आवश्यक बने। मालिक-मजदूर संबंध प्रस्थापित हुए, इसलिए 'अदालतबाजी' बढ़ी। वकील की जरूरत है। इन्हें 'नेसेसरी ईविल' मानें तो भी 'ईविल' को भूलकर हम 'नेसेसरी' की ओर बढ़े। इसमें दोष किसका है, यह संदर्भहीन है। लेकिन यह असलियत है, इसे नकारा नहीं जा सकता। *असल में इस प्रक्रिया में गांधी यह व्यक्ति मुख्य नहीं है, मुख्य है विचार। इस विचार में प्रतिक्रिया प्रातिशोध में परिवर्तित न हो यही तो नम्र अपेक्षा थी। गांधी की लंगोटी और साधु संन्यासी की लंगोटी, इन दोनों में जमीन-आसमान का फर्क है। गांधी के वस्त्र 'करुणादर्शक' हैं। एक के पास इतने वस्त्र हैं कि उन्हें पहनने के लिए प्रसंग ढूंढ़ने पड़ते हैं; और दूसरे के पास लज्जारक्षण के लिए भी वस्त्र नहीं है, यह विषमता गांधी नहीं सह सके। इसी में से अस्तेय और अपरिग्रह के व्रत का जन्म हुआ। जीवन-संजीवन-उपजीवन इन सभी में मनुष्य की सहभागिता और पुरुषार्थ प्रत्यक्ष रूप से होना चाहिए। परोक्ष नहीं, यही तो विज्ञान युग की भी मांग है। गांधीजी द्वारा जो आजादी के लिए आंदोलन किये गये, उनसे गांधी के विधायक कार्य और रचनात्मक संस्था का अनुबंध था, इसलिए उनका प्रभाव था। आज के समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया से विधायक संस्थाओं का अगर अनुबंध रहेगा, तो ही उसका प्रभाव पड़ सकता है। लेकिन वह अनुबंध धीरे-धीरे कम हो रहा है, यह आज की वास्तविकता है। जो क्रांति या परिवर्तन चाहते हैं, उनके खुद के जीवन में इन क्रांतियों के मूल्यों का प्रारंभ होगा, तभी तो उनमें शक्ति आयेगी।* इसलिए हृदय-परिवर्तन से सभी परिवर्तन की प्रक्रियाओं का प्रारंभ

अपने ही जीवन से करना होगा। वरना दूसरों को तत्त्वज्ञान सिखाने वाले खुद सूखे पाषाण बनकर रहेंगे। संस्था और संस्थाचालकों की भूमिका क्या होनी चाहिए, यह अहम प्रश्न है। *भूमिका शब्द के दो अर्थ हैं। एक है 'रोल' और दूसरा है 'एटीट्यूड' वस्तुस्थिति या कार्य, और मनोवृत्ति। और उसमें भी समाज के लिए कौन-सी प्रमुख है। केवल कार्य या विधायक वृत्ति या विधायक प्रेरणा। हमारे अपने जीवन में उसके कारण परिवर्तन हुआ है क्या? हमारी मनोवृत्ति में उसके कारण कुछ बदलाव आया है क्या? यही अहम सवाल है? जिसका उत्तर हमें ढूंढ़ना है।* इसके लिए संस्था के अंतर्गत सौहार्द हो यह तो जरूरी ही है, लेकिन समानधर्मी संस्थाओं में भी आपस में सौहार्द की भावना हो, यह उससे भी अधिक आवश्यक है। आज गांधी की आकांक्षा है, लेकिन 'लालसा' भिन्न है। यह अंतर्विरोध समाप्त करना यही तो हमारा असली दायित्व है।

यंत्र माने क्या?

आज यंत्र की ओर समाज की पहल हो रही है। लेकिन यंत्र क्या है, यह भी समझ लेना आवश्यक है। अधिक से अधिक लोगों का काम, कम से कम लोगों द्वारा, कम से कम समय में करने लेने का साधन है यंत्र। इसके कारण इस देश में बेकारी बढ़ेगी। बेकारी और गरीबी दोनों का निवारण करने के लिए हर हाथ को काम मिले, ऐसी योजना आवश्यक है। चरखा इसी का प्रतीक है। अधिक से अधिक लोगों को काम मिल सकता है, उस खादी की प्रक्रिया को गांधी ने 'सेन्ट-परसेन्ट' स्वदेशी कहा है। देश के लिए आवश्यक कपड़ा देश में ही बने, यह स्वदेशी वृत्ति है और जो बेकार हैं, उन्हें काम भी मिले, यह 'सेन्ट-परसेन्ट' स्वदेशी वृत्ति है। यह नया आयाम गांधी की देन है; और उसी के साथ शरीर-श्रम का व्रत और शरीर-श्रम की प्रतिष्ठा, यह मूल्य जुड़ा हुआ है। 'कपास' से 'कपड़ा', यह वस्त्र स्वावलंबन की भूमिका ही 'सेन्टपरसेन्ट' स्वदेशी वृत्ति है। जो गरीब हैं, बेकार हैं, उन्हें किसी की मेहरबानी से जो मिलता है, उसमें शक्ति नहीं होती, वह उसे उसी के पराक्रम से मिले, यही तो शत-प्रतिशत स्वदेशी वृत्ति है। *इस देश की तीन प्रमुख समस्याएं हैं। एक, देश की स्वतंत्रता का सरंक्षण, दूसरी समस्या है भूख, गरीबी*

और बेकारी और तीसरी समस्या है मानवनिष्ठ भारतीयता और भारतीय लोकतंत्र की। 'भूख' का उत्तर है अन्न। इसलिए क्रांति की शुरुआत जहां अन्न की उपज होती है, और जो किसान वह करता है, उस खेत और किसान से होनी चाहिए। अन्न का उत्पादक जो किसान है वही क्रांति की विभूति है। जिसे 'भूख' है उसे अन्न मिलना चाहिए, इसलिए अनाज या अन्न की कीमत नहीं होनी चाहिए। उसका सिर्फ 'मूल्य' होना चाहिए। आज तो सिर्फ मूर्ख किसान अनाज बोता है। बाकी के सारे पैसे की ही पैदाइश करते हैं। आज तो महाराष्ट्र शासन ने 'अनाज' से भी मद्यनिर्मिति का कार्यक्रम बनाया है। किसान के प्रश्न पैसे देकर सुलझ सकते हैं, यह माना गया है, जो कि अपसिद्धान्त है। और हम यह भूल गये कि इनसान सिर्फ पैसों में तौला नहीं जा सकता। और जिस उत्पादन प्रक्रिया की प्रतिष्ठा नहीं होती, उसमें किसान की रुचि नहीं रहेगी। अनाज बोनेवाला किसान 'प्रतिष्ठा' का जीवन चाहता है। उसे पैसों से भी अधिक प्रतिष्ठा प्यारी है। इस प्रश्न की ओर गांधी की विधायक संस्थाओं ने अपेक्षित ध्यान नहीं दिया यह दुर्भाग्यपूर्ण सत्य है।

जल, जंगल, जमीन

वैसे भी जल, जंगल, जमीन ये विषय गांधी की विधायक संस्थाओं ने कभी ताकत से नहीं उठाये और न ही अपने एजेन्डे में उन्हें प्राथमिकता दी। हम यह भी भूल गये कि भूखे को अन्न मिले, यह संस्कृति है और वह उसका अधिकार भी है। और भूख न होते हुए भी जो पैसे वाले उसे खरीद सकते हैं, उन्हें 'अन्न' खरीदने का अधिकार रहे, यह 'विकृति' है। अन्न का सिर्फ मूल्य है, कीमत नहीं, यह भावना विधायक संस्कृति की भावना है। अन्न का उत्पादन करने वाला किसान क्रांति का अग्रदूत है, यही गांधी विचार पर आधारित विधायक भावना है। तभी तो *'इंडियाज़ कल्चर इज़ एग्रिकल्चर'* यह घोष वाक्य प्राणवान् बन सकेगा, और कृषि संस्कृति की प्रस्थापना हो सकेगी। किसानों की दुर्दशा और उनकी आत्महत्या शहरवासी उच्च वर्ग के लिए सिर्फ अखबार की खबर है। लेकिन असल में वह उनके जीवन-मरण का प्रश्न है, जिसकी ओर अनदेखी करना सिर्फ गलत ही नहीं, बल्कि वेदनाकारी भी है।

आज हम संक्रमण काल से गुजर रहे हैं। पुराने मूल्य, पुरानी प्रतिष्ठाएं जीर्ण होकर ढह रही हैं। नये मूल्य और नयी प्रतिष्ठाओं की स्थापना करनी है। जागतिकीकरण के नये युग में मूल्य-परिवर्तन की सिद्धि हममें से हरएक रचनातमक कार्यकर्ता पर निर्भर है। इसके लिए शायद अनेक व्यक्तियों को आत्माहुति देनी पड़ेगी; जिससे जीवन अधिक प्राणवान बनेगा और नये समाज का निर्माण हो सकेगा। परिस्थिति जितनी प्रतिकूल हो, पराक्रम के लिए उतना ही अधिक अवसर होता है, यही गांधी-विचार का अंतिम सत्य है। ❑

16 अक्टूबर : विश्व खाद्य-दिवस

छोटे किसानों से ही होगी खाद्य-सुरक्षा

❑ सिल्विया के.

''यदि किसी हाथी का पैर चूहे की पूंछ पर पड़ जाए और आप यह कहें कि आप तटस्थ हैं, तो चूहा ऐसी तटस्थता को पसंद नहीं करेगा।'' **–धर्मगुरु डेसमंड टूटू**

विकासशील विश्व का अनुभव बताता है कि छोटे एवं सीमांत किसानों के माध्यम से ही खाद्य-सुरक्षा और खाद्य सार्वभौमिकता सुनिश्चित की जा सकती है। वहीं दूसरी ओर महाकाय खाद्य व्यापार कंपनियां बहुत तेजी से विश्व खाद्य व्यापार को अपने कब्जे में लेती जा रही हैं। इसका भविष्य में अत्यन्त नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा और निर्धन लोगों का जीवन कमोवेश असह्य हो जायेगा। विश्व खाद्य-दिवस पर प्रस्तुत है जवाबदेह कृषि निवेश की अनिवार्यताओं को रेखांकित करता यह आलेख। –का. सं.

दक्षिण अफ्रीका के सर्वाधिक प्रसिद्ध *धर्मगुरु डेसमंड टूटू* ने एक बार अपनी विशिष्ट शैली में कहा था, ''यदि किसी हाथी का पैर चूहे की पूंछ पर पड़ जाए और आप यह कहें कि आप तटस्थ हैं, तो चूहा ऐसी तटस्थता को पसंद नहीं करेगा।'' उनकी यह सपाटबयानी अब खासतौर पर प्रासंगिक हो गयी है, क्योंकि रोम में होने वाली संयुक्त राष्ट्र विश्व खाद्य सुरक्षा समिति की बैठक वर्तमान खाद्य संकट और भूमि हथियाने की अभूतपूर्व लहर के मध्य 'जवाबदेह कृषि निवेश' (आईएआई) को भी परिभाषित करेगी।

जब बात कृषि और भोजन की हो तो यहां कृषि व्यापार ही हाथी है। केवल तीन कंपनियों के पास व्यावसायिक बीज बाजार का 50 प्रतिशत हिस्सा है और मात्र चार कंपनियों के नियंत्रण में वैश्विक खाद्यान्न और सोया व्यापार की 75 प्रतिशत हिस्सेदारी है। इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों का तर्क यह है कि राज्य की भूमिका एक तटस्थ बिचौलिये की होनी चाहिए और वह कृषि में प्राथमिक निजी निवेश को प्रोत्साहित करे। वे *'जिम्मेदार निवेश'* हेतु मार्गदर्शिका स्वीकार करने को तैयार तो हैं, लेकिन चाहते हैं कि यह सब कुछ प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के बढ़ते स्तर और राष्ट्रीय कृषि क्षेत्रों के वैश्विक उत्पाद श्रृंखलाओं एवं बाजारों के और अधिक समावेश के साथ हो। यह तो सामान्य व्यापारिक पहल है जो कि जवाबदेह कृषि निवेश सिद्धांतों को वर्तमान में विद्यमान कृषि व्यापार गतिविधियों के सांचे में ढालना चाहती है।

हालांकि ये सिद्धांत कुछ निगमों के लाभ में वृद्धि करेंगे, लेकिन प्रमाण बताते हैं कि ये सभी को पर्याप्त भोजन के अधिकार को प्राप्त करने हेतु खाद्य सुरक्षा पर गठित समिति के मन्तव्य की पूर्ति नहीं कर पायेंगे। वर्तमान में विश्व में प्रत्येक आठ में से एक व्यक्ति अल्पपोषित है और हाल के वर्षों में स्थितियां बदतर ही हुई हैं। वास्तविकता यह है कि वैश्विक बाजारों पर निर्भरता ने ही भावों को सन् 2007 में उस स्तर पर पहुंचा दिया था, जिसका अनुभव हमने वास्तविक अर्थों में सन् 1846 के बाद से अब तक कभी नहीं किया था। इससे न केवल अतिनिर्धनता में रहने वालों की संख्या में 13 से 15 करोड़ की वृद्धि हुई, बल्कि इससे वैश्विक दक्षिण (विकसित राष्ट्रों) की सरकारों द्वारा खाद्य दंगों से सुरक्षा हेतु भूमि हथियाने की लहर में अभूतपूर्व तेजी आयी और दूसरी ओर बहुराष्ट्रीय निगम आने वाली कमी से लाभ कमाने पर गिद्ध-दृष्टि गड़ाये बैठे हैं।

याद रखिए, छोटी जोत वाला किसान इस मामले में 'चूहा' है। लेकिन वे केवल पीड़ित नहीं है, बल्कि वे खाद्य-सुरक्षा हेतु सर्वाधिक प्रगतिशील समाधान भी उपलब्ध कराते हैं। अनुमान है कि विकासशील विश्व में तकरीबन 50 करोड़ सीमांत किसान हैं जो कि दो अरब लोगों को रोजगार प्रदान करते हैं एवं एशिया एवं उपसहारा अफ्रीका में उपयोग होने वाले भोजन का करीब 80 प्रतिशत तक उत्पादित भी करते हैं। ये छोटे किसान ही हैं जो वास्तव में वैश्विक खाद्य-सुरक्षा में योगदान करते हैं।

'जिम्मेदार कृषि निवेश' को लेकर होने वाले किसी भी अंतर्राष्ट्रीय समझौते को इस बात से प्रारम्भ किया जाना चाहिए कि किस तरह इन छोटे स्तर पर खाद्य उत्पादन करने वालों को सशक्त किया जाए, न कि बेदखल। **ट्रांसनेशनल इंस्टीट्यूट की हालिया रिपोर्ट 'कृषि निवेश का पुनर्दावा' के अंतर्गत ब्राजील से घाना और अमेरिका से थाइलैंड तक राज्य-किसान सहयोग के विकल्पों का अध्ययन किया गया। अध्ययन में बताया गया है कि जब राज्य सही नीतियां बनाता है और छोटे स्तर पर कार्यरत खाद्य उत्पादकों को निवेश में सहायता करता है, तो इसके जबर्दस्त सकारात्मक परिणाम सामने आते हैं।**

ब्राजील का जीरो हंगर (भूख रहित) कार्यक्रम, जिसमें सार्वजनिक स्वाथ्य, पोषण, सामाजिक सुरक्षा, शिक्षा एवं आजीविका प्रोत्साहन को एक साथ जोड़ा गया है, पिछले एक दशक में इस देश के लोगों के जीवन स्तर में प्रभावशाली सुधार का एक बड़ा कारण है। **इस जीरो हंगर कार्यक्रम ने छोटे किसानों के लिए सफलतापूर्वक नये बाजार खोल दिये एवं उन्होंने राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। विद्यालयीन भोजन कार्यक्रम के अंतर्गत ब्राजील की प्रत्येक नगरपालिका को प्रत्येक विद्यार्थी के हिसाब से सब्सिडी मिलती है और इसमें से 70 प्रतिशत नगरपालिकाएं, असंवर्धित खाद्य यानि खाद्यान्न के रूप में खरीदती है और इसका 30 प्रतिशत स्थानीय खेतों से आता है।**

छोटे किसानों द्वारा प्रयोग में लायी जाने वाली टिकाऊ कृषि पारिस्थितिकी पर आधारित कृषि तकनीकों को सरकार द्वारा प्रोत्साहित किये जाने से कृषि से पर्यावरण और जलवायु पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों में भी कमी आती है। भारत सरकार भी टिकाऊ धान सघनीकरण (एसआरआई) प्रणाली को प्रोत्साहित कर रही है, जिसमें जैविक खादों एवं विभिन्न प्रकार की कृषि पारिस्थितिकी तकनीकों का प्रयोग होता है एवं इससे रिकार्ड उपज प्राप्त हो रही है। इसके बावजूद पारम्परिक चावल शोध संस्थानों एवं निजी शोध एवं विकास उद्योग द्वारा एसआरआई की अनदेखी की जा रही है, क्योंकि इससे कृषि व्यापार आपूर्तिकर्ताओं के हितों को खतरा पैदा होता है।

अक्सर यह मान लिया जाता है कि राज्य द्वारा छोटे कृषि उत्पादकों की सहायता करने से लागत अधिक होगी एवं उपभोक्ताओं को अधिक मूल्य देना पड़ेगा। परंतु सार्वजनिक नीति को लचीले रूप में प्रयोग में लाया जाए तो दोनों ही समूह लाभान्वित हो सकते हैं। खाद्य संकट से निपटने की सर्वाधिक प्रभावशाली रणनीतियों में शामिल हैं सार्वजनिक भंडारण का इस्तेमाल एवं मुख्य खाद्य उत्पादों हेतु उत्पादकों के लिए न्यूनतम एवं उपभोक्ताओं के लिए अधिकतम मूल्य निर्धारित करना। इन तरीकों का इस्तेमाल करने से वर्ष 2008 में जब पड़ोसी देशों में अन्न के दाम बढ़ रहे थे तब इंडोनेशिया में इनके दामों में कमी आ रही थी।

हमेशा होने वाला सामान्य व्यापार कोई विकल्प नहीं है। अब समय आ गया है जबकि राष्ट्रों को अपनी झूठी तटस्थता को समाप्त करना होगा और पक्ष लेना होगा। वे किसी ऐसे मॉडल को प्रोत्साहित न करें जो कि मूलतः लोकतंत्र विरोधी है और जिसमें इस बात की पूरी सम्भावना है कि वह चुनिन्दा विशालतम संवर्धकों, व्यापारियों एवं खुदरा व्यापारियों के माध्यम से 'कृषि एकाधिकार' को और विस्तारित करके विश्व खाद्य प्रणाली को हथियाना चाहता है। सरकारों को ऐसे जवाबदेह कृषि निवेश के सिद्धांतों के प्रति समर्पित होना चाहिए, जो कि विश्व किसान परिवार की स्थिति को मजबूत करते हों और खाद्य सार्वभौमिकता के विचार को आगे बढ़ाते हों। *(सप्रेस)*

सूचना

आप सभी सुहृद पाठकों, ग्राहकों, लेखकों व शुभचिन्तकों से अनुरोध है कि अपने समसामयिक महत्त्वपूर्ण

आलेख

व क्षेत्रीय कार्यक्रमों की

रपट

पत्रिका के लिए जरूर भेजें। आप हमें अपने विज्ञापन भेजकर भी सहयोग कर सकते हैं। आपके सहयोग की सादर अपेक्षा है।

× × ×

आपकी सुविधा के लिए हमारी वेबसाइट

www.sssprakashan.com

पर 'सर्वोदय जगत' का प्रत्येक अंक उपलब्ध है। –सं.

31 अक्टूबर : सरदार पटेल जयंती

राष्ट्रीय एकता और अनुशासन के प्रतीक : सरदार वल्लभाई पटेल

❑ डॉ. रामसिंह यादव

प्रखर वक्ता और निर्भीक नेता सरदार वल्लभभाई पटेल का जन्म गुजरात प्रांत के करमसद गांव में 31 अक्टूबर 1875 ई. को हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा नडियार में हुई थी। हाईस्कूल पास करके उन्होंने मुख्तयारी की परीक्षा पास की और गोधरा तथा बोरसद में कार्य आरम्भ किया। बाद में प्रथम श्रेणी में बैरिस्टरी की उच्च परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1918 में वे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सम्पर्क में आये और बैरिस्टरी को तिलांजलि देकर राष्ट्र-सेवा में आगे आ गये। वह सत्याग्रहियों के साथ देश की आजादी की लड़ाई में साथ हो गये थे। सरदार वल्लभभाई पटेल जब एक बार राष्ट्रप्रेम से अभिभूत होकर राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़े, उसके पश्चात् वे कभी पीछे नहीं हटे। सन् 1923 में ध्वज की रक्षा के लिए नागपुर का सत्याग्रह आंदोलन उनकी अध्यक्षता में संपन्न हुआ था। सन् 1930 में उन्हें बंदी बना लिया गया। सन् 1935 के अधिनियम के अनुसार निर्वाचन कार्यों के लिए पार्लियामेन्ट्री बोर्ड पटेल की अध्यक्षता में बना। हैदराबाद के निजाम को भारतीय संघ में सम्मिलित होने के लिए विवश करने तथा देशी राज्यों की समस्या का अंत करने वाले नवीन भारत के निर्माता वल्लभभाई पटेल थे।

सरदार पटेल दृढ़ दृष्टि से किसान के लड़के थे। उन्होंने अपनी किसान जाति की बहुमुखी प्रतिभा पायी थी। उनका रंग रूप अत्यन्त भव्य था। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था। उनकी आंखें स्थिर रहती थीं। बहुत ही नपे-तुले शब्दों में बोलते थे। लेकिन वे जिन शब्दों का प्रयोग करते थे वे शक्ति और प्रभाव से परिपूर्ण होते थे। उनमें आत्मविश्वास कूट-कूट कर भरा था। सरदार पटेल को चापलूसी से चिढ़ थी। वह स्वयं जीवन में जितने स्पष्ट थे वैसा ही दूसरों को भी देखना चाहते थे। आपसी स्पष्टवादिता और सपाट वचन से कभी-कभी तो वे गांधीजी को भी नाराज कर लेते थे। लेकिन बाद में जब गांधीजी को असलियत का पता चलता तो वे पटेल को बुलाकर कहते थे, तुम सही हो पटेल। पटेल का संपर्क गांधीजी के साथ पहली बार वकीलों के क्लब में हुआ था। *सरदार पटेल ने जब दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी की भूमिका, बनारस विश्वविद्यालय में उनके भाषण और चम्पारण में अंग्रेजों को उनकी प्रथम चुनौती के बारे में सुना तब उन्हें यह महान सत्य स्वीकार करना पड़ा था कि गांधीजी ही वह आदमी थे। उन्होंने गांधीजी को अपना सच्चा मित्र दार्शनिक और पथ-प्रदर्शक स्वीकार करते हुए तुरन्त अपनी सेवाएं अर्पित कर दी थी। गांधीजी के प्रति स्वामिभक्ति और आस्था उनमें अटूट थी; लम्बे अर्से तक वे गांधीजी के साथ राष्ट्रीय स्तर पर देश सेवा में लगे रहे। सरदार वल्लभभाई पटेल ने गांधीजी की मंशानुसार देश के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये।*

सरदार पटेल ने अन्याय और अत्याचार के समक्ष कभी सिर नहीं झुकाया। उनकी महानता और बलिदान अद्भुत थे। उन्होंने विदेशी सरकार की तानाशाही अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध एक सशक्त आंदोलन में खुले हृदय से भाग लिया था, जिसमें तत्कालीन जनता की भावनाएं मुखर हुई थीं। उस आंदोलन की भूमिका का धरातल संकुचित नहीं था। वह आंदोलन एकाकी नहीं था, जिसका नेतृत्व देश को परतंत्रता की बेड़ियों से छुड़ाने के लिए सरदार पटेल की सबल भुजाओं और उनके व्यापक दृष्टिकोण ने किया था।

युद्ध और शांति दोनों में सरदार पटेल की गांधीजी के प्रति स्वामिभक्ति के बारे में कोई संदेह नहीं किया जा सकता था। ऊपर से कठोर और अंदर से स्नेह और प्रेम का स्रोत उनके हृदय की विशेषता थी। जब गांधीजी यरवदा जेल में थे तो उन्होंने उन्हें अपनी महान नर्स और मां कहा था। सरदार का अपने छोटे-बड़े सभी साथियों से समान व्यवहार होता था और वे उनकी आवश्यकताओं को पूरा ध्यान रखते थे। उनमें

जहां दृढ़ता एवं मानवातीत संगठन शक्ति थी वही गंभीर विश्वास और दया की भावना भी विद्यमान थी।

सरदार पटेल भारत की राष्ट्रीय एकता और अनुशासन के प्रतीक थे। भारत को आजादी मिली, सैकड़ों वर्षों की गुलामी का अंधकार दूर हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उन्हें एक राजनीतिक नेता के रूप में भिन्न प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ा। लेकिन उनकी बहुमुखी प्रतिभा और बुद्धिमत्ता राष्ट्र को पूर्णतः अर्पित थी। शासनतंत्र का उन्हें एक कुशल प्रशासक के रूप में फिर से निर्माण करना था। वह लोकतांत्रिक कल्याणकारी राज्य की स्थापना और जनता के हितों का महत्त्व समझते थे। इसके लिए राजनीतिक संगठन की वे कीमत जानते थे। उनके लिए दोनों में कोई विरोध नहीं था। उन्हें एक-दूसरे के साथ जोड़कर चलना था। सहयोग करना था। वह भलीभांति जानते थे कि राजनीतिक कार्यकर्ता के सामाजिक दायित्व और प्रशासकों के कर्तव्य के बीच विभाजन रेखा कहां पर है, तथापि उन्होंने वरिष्ठ अधिकारियों को कार्यकर्ताओं के संपर्क में रहने का आदेश दिया था और कार्यकर्ताओं को यह भी स्पष्ट कर दिया था कि प्रशासन को चलाने का काम प्रशासन से संबद्ध लोगों का है। इस बारे में कोई भ्रम नहीं रहे, और इसलिए इसमें हस्तक्षेप करने से बचना चाहिए।

इतिहास में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण घटनाओं में एक, और सरदार पटेल का महत्त्वपूर्ण योगदान है, रियासतों का एकीकरण। उनके उस योगदान को राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता इसलिए पटेल की तुलना जर्मनी के बिस्मार्क से की जाती रही है।

सरदार वल्लभभाई पटेल के लिए राष्ट्रहित सर्वोपरि था। आत्मसंयम की महान भावना और दृढ़ निश्चय उनमें अपूर्व था। कब तना जाय, कब समझौता किया जाय, इस राजनीति में वह निपुण थे। भारत की 584 रियासतों का विलय कोई मामूली काम नहीं था, उनको इसमें साम-दाम-दंड-भेद सभी नीतियों का प्रयोग करना पड़ा। कहीं प्यार से तो कहीं समुचित प्रतिष्ठा देकर उनके राजमुकुट एक-एक करके उतरवा लिये। इसलिए सरदार पटेल ने किसी से कोई गलत वायदा अथवा ठकुरसुहाती बात नहीं कही थी, साफ बोला था। सपाट कहने की उनकी आदत से धीरे-धीरे सब राजा-महाराजा परिचित हो गये थे। फिर भी सब जानते थे कि पटेल की भाषा भले ही कठोर हो पर उनका हृदय निर्मल व निष्कपट और कोमल है।

शत्रु समझकर बदला लेने की भावना उनमें नहीं थी। अपितु मित्रवत् व्यवहार करके वे राजनीतिक गुत्थियां सुलझाने के प्रथम हिमायती थे। बाद में सख्त कठोर एकदम लोहपुरुष। देशी रियासतों का विलय जैसा कि कहा गया है कि वह कोई साधारण काम नहीं था। पांच सात पीढ़ियों से चले आ रहे तख्त-ताज को उखाड़ना कोई मामूली बात नहीं थी। जाते-जाते भी अंग्रेज अपने पैर जमाने का सहारा इन रियासतों को बनाना चाहते थे। उन्हें भारत या पाकिस्तान से मिलने अथवा अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाये रखने की खुली छूट ब्रिटिश संसद ने दे दी थी। पर सरदार पटेल की चाणक्य नीति, राजनीतिक क्षमता और दूरदर्शिता के सामने उनकी एक न चली। एक-एक करके सब राजे-रजवाड़े ताश के पत्तों की तरह ढहते चले गये। इसमें कई रियासतें तो कई राष्ट्रों से भी बड़ी थी। अकेली हैदराबाद रियासत का क्षेत्रफल 82700 वर्गमील में फैला था और पौने दो करोड़ की आबादी थी। उस सैकड़ों सालों से जमी पुरानी सामंतशाही को भारत के उपप्रधानमंत्री सरदार पटेल ने एक जीवट योद्धा की भांति एक झटके से उखाड़ फेंका था। इस प्रकार पाकिस्तान बनने के बाद भारत को विशाल भारत बनाने में सरदार वल्लभभाई पटेल का अविस्मरणीय योगदान है।

अंग्रेजी राज्य में मुसलमानों को सेण्ट्रल असेम्बली में मजहब के नाम पर पृथक सीटें मिली थी। स्वाधीनता के बाद भी उनके कुछ नेता वह सुविधा जारी रखना चाहते थे। संविधान सभा में अब यह निर्णय होने लगा तो अंदर और बाहर सभी तरफ गरमा-गरमी का वातावरण बन गया। गृहमंत्री के नाते सरदार वल्लभभाई पटेल को सदन में यह प्रस्ताव रखना था। मुस्लिम संगठनों के कई दिग्गज नेता प्रतिनिधि बड़ी तैयारियों से विरोध करने की योजना बनाकर वहां गये थे। मौलाना हिफाबुर्रहमान जैसे कुशल वक्ता भी उनमें शामिल थे, पर जब सरदार पटेल का भाषण समाप्त हुआ तो वे सभी मारे खुशी से उछल पड़े। मौलाना हिफाबुर्रहमान ने तो यह नहीं सोचा कि वह इस समय कहां उपस्थित हैं और मारे खुशी के बिना सोचे-समझे सरदार पटेल को अपनी बांहों में भर लिया।

सरदार पटेल की किसी भी बात में लाग-लपेट नहीं होती थी। वह 'मन में कुछ और वाणी में कुछ और' प्रवृत्ति के आदमी नहीं थे। अपने बारे में स्वयं कुछ कहने से वह हमेशा बचते थे पर जब पानी सिर पर ही आ जाता तो वह किसी को भी खरी-खोटी सुनाने से नहीं चूकते, आड़े हाथ लेने से नहीं हिचकते थे।

इस प्रकार भारत की राजनीति में, इतिहास में सरदार वल्लभभाई पटेल अपने सफल नेतृत्व की एक अमिट छाप देश में छोड़ गये हैं। उनके अभाव में, हम वह नहीं होते जो आज हैं। उनकी प्रशासनिक क्षमता, चुस्ती, स्फूर्ति, भय से बँधने से मुक्त ईमानदारी और समस्याओं से समझकर निबटने की शक्तिशाली नेतृत्व क्षमता याद के रूप में हमारे हृदय में अमिट बनी हुई है। ❑

गतिविधियां एवं समाचार

बिहार सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष का सर्वसम्मति से चयन

बिहार के छपरा में 20 सितंबर, 2014 को आयोजित लोकसेवकों की बैठक में बिहार सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष का चयन सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष भाई महादेव विद्रोही द्वारा नियुक्त पर्यवेक्षक भाई शिवविजय, संयोजक सर्व सेवा संघ परिसर, वाराणसी के सुपर्यवेक्षण में सम्पन्न हुआ, जिसमें राज्य सर्वोदय मंडल के वरिष्ठ उपाध्यक्ष भाई त्रिभुवन नारायण सिंह को सर्वसम्मति से अगला अध्यक्ष चुना गया।

सर्वसम्मति से हुए इस चुनाव के लिए वर्तमान अध्यक्षा कल्पना अशोक ने सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष, पर्यवेक्षक तथा सभी लोकसेवकों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है तथा सबों को हार्दिक शुभकामनाएं दी हैं।

गांधी-दर्शन प्रासंगिक

राजस्थान राज्य गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष डी. आर. मेहता ने मौजूदा परिस्थिति में गांधी-दर्शन को प्रासंगिक बताया। उन्होंने युवाओं को गांधी के विचारों से अवगत कराने पर जोर दिया।

मेहता मंगलवार को बापू नगर स्थित विनोबा-ज्ञान मंदिर में आयोजित गांधी स्मारक निधि की 82वीं बैठक को संबोधित कर रहे थे। निधि विद्यालयों में सर्वोदय विचार परीक्षा तथा गांधी दर्शन पर भाषण प्रतियोगिता आयोजित करेगी। विचार-विमर्श में प्रो. रमेश अरोड़ा, प्रो. प्रतिभा जैन, राम वल्लभ अग्रवाल, रामदयाल खंडेलवाल, सवाई सिंह, सुरेश चन्द्र शर्मा, रामेश्वर विद्यार्थी ने भाग लिया। **–रामेश्वर विद्यार्थी**

संपादक के नाम पत्र

आदरणीय संपादक महोदय,

मैं 'सर्वोदय जगत' का आजीवन ग्राहक हूं। यह देखकर प्रसन्नता हुई है कि विगत तीन-चार महीने से 'सर्वोदय जगत' के रंग-रूप, आवरण की आकर्षक तस्वीर एवं महापुरुषों के वचन जिस प्रकार प्रस्तुत किये जा रहे हैं, वे पत्रिका को काफी आकर्षक रूप प्रदान कर रहे हैं। 1-15 अगस्त 2014 का अंक जो 'अगस्त क्रांति' विशेषांक है, का आवरण चित्र बड़ा आकर्षक है। इस अंक का संपादकीय युवाओं में शांति का एक संदेश है। साथ ही बिमल कुमार का 'अगस्त क्रांति और गांधीजी की विरासत' लेख भी शैक्षणिक दृष्टिकोण से उच्च कोटि का है। 'राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं का योगदान' डॉ. रेणु कुमारी का आलेख भी प्रशंसनीय है।

इसी तरह 1-15 सितंबर 2014 'विनोबा जयंती' से संबंधित आवरण का आकर्षण देखते ही बनता है। चक्र व सूर्यमुखी में विनोबाजी, सर्वधर्म स्मरण के साथ प्रार्थना सभी ईश्वरनामों के चित्रण ने इसकी सुंदरता को काफी बढ़ा दिया है, जिसकी जितनी प्रशंसा की जाए, कम है। इस अंक के सभी आलेख जैसे विनोबाजी का 'इस दुनिया की प्यास है साम्ययोग यानी सर्वोदय', 'विनोबा : एक युग द्रष्टा'-बिमल कुमार, तथा गांधीजी, जयप्रकाशजी, विनोबा, धीरेन्द्र मजूमदार, महादेव विद्रोही तथा अशोक मोती के राष्ट्रभाषा से संबंधित आलेख महत्त्वपूर्ण हैं।

इसके साथ ही आपका ध्यान मेरे जिले में पत्रिका के विलम्ब से आने की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। इस पर कृपया ध्यान दिया जाए ताकि पाठकों की संख्या बढ़ सके।

–प्रो. दीपक कुमार सिंह,
मंत्री, जिला सर्वोदय मंडल, सहरसा

× × ×

मेरे पते पर जो 'सर्वोदय जगत' आ रहा था, वह लगभग 3 माह से आना बंद है। मैं आपको यह बतलाना चाहता हूं कि मैं वर्तमान में ओड़िया भाषा में प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'सर्वोदय' के संपादक की जिम्मेवारी संभाल रहा हूं। 'सर्वोदय जगत' पत्रिका से मुझे काफी सहूलियत होती थी कि उससे सामग्रियों को ओड़िया में अनुवाद कर उपयोग करूं। 'सर्वोदय जगत' के नहीं मिलने से यह काम रुक गया है।

आग्रह है कि कृपया एक पत्रिका मुझे भिजवाने का कष्ट करें। **–डॉ. विश्वजीत**

सूचना के लिए आभारी हूं। इसी तरह हमें आपके मार्गदर्शन प्राप्त होते रहें। भाई विश्वजीत, खेद है कि किसी कारण आपको पत्रिका नहीं जा रही है। इसे तुरंत भिजवाना शुरू कर रहा हूं। **–का. सं.**

अखिल भारतीय नशाबंदी परिषद कार्यकर्ता सम्मेलन सम्पन्न

भाई रजनीश कुमार अध्यक्ष बनाये गये

साधना केन्द्र, राजघाट, वाराणसी में अखिल भारतीय नशाबंदी परिषद् का कार्यकर्ता सम्मेलन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ, जिसमें देश के विभिन्न प्रांतों के लगभग 150 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

सर्व सेवा संघ के विनोबा सभागृह में 23-24 सितंबर को दो दिनों का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। प्रतिनिधियों ने देश में नशाबंदी के लिए एकजुट होकर काम करने का संकल्प किया। ज्ञातव्य है कि हरियाणा, उड़ीसा, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, बिहार से महिलाएं भी सम्मेलन में शामिल हुईं। इस अवसर पर सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष भाई महादेव विद्रोही तथा परिषद के महासचिव एवं हरियाणा प्रदेश सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष भाई महावीर त्यागी विशेष अतिथि के रूप में उपस्थित रहे। प्रतिभागियों ने सर्वसम्मति से भाई रजनीश को परिषद का अध्यक्ष तथा निवर्तमान अध्यक्ष डॉ. एस.एन. सुब्बराव को संरक्षक मनोनीत किया।

24 सितंबर को लोकसमित, नशाबंदी परिषद, सर्व सेवा संघ और सर्वोदय मंडल के लोगों ने एक रैली भी निकाली जो बाद में डॉ. सुब्बराव द्वारा 'भारत जोड़ो' के संगीतमय कार्यक्रम के साथ सम्पन्न हुई। इस दौरान नशामुक्ति पर नुक्कड़ नाटक भी किये गये। कार्यक्रम में शहर के कई गणमान्य लोगों ने अपने विचार प्रकट किये। **–का.सं.**

और अंततः धर्मनिरपेक्षता

हे राम!

❑ अशोक मोती

सचाई यह है कि गांधी ने सर्वधर्म समभाव एवं धर्मनिरपेक्षता के लिए चाहे अपनी जान ही क्यों न दे दी हो—देश में अभी भी धर्मनिरपेक्षता को एक रहस्य ही बनाकर रखा गया है; गांधी को गोली दागी गयी और धर्मनिरपेक्षता बोलने वालों को अभी गालियां ही मिल रही है। निःसंदेह इसकी जड़ में 'धर्म' की गलत समझ है तथा धर्म की संकुचित व्याख्या है। गाली देने वाले धर्मनिरपेक्षता का मतलब जीवन से धर्म को समाप्त करना समझते हैं और इसीलिए गांधी को अपने प्राण देने पड़े।

सन् 1920 में जब गांधीजी ने देश के स्वाधीनता संग्राम की बागडोर अपने हाथ में ली तो सत्याग्रह के अहिंसात्मक असहयोग के लिए कई रचनामक कार्यों को उसका आधार बनाया। गांधी के 5 रचनामक कार्यक्रमों में सबसे ऊपर स्थान 'साम्प्रदायिक एकता' का था, उसके बाद ही छुआछूत मिटाना, नशाबंदी, खादी और ग्रामोद्योग के कार्यक्रम थे। इतना ही नहीं सन् 1921 में स्वयं सेवकों के प्रतिज्ञा-पत्र में अहिंसा के बाद जो सबसे पहली शपथ थी वह थी—''मैं भारत में रहने वाले सब सम्प्रदायों, हिन्दू, मुसलमान, सिख, मराठी, ईसाई या यहूदी और भारत में बसने वाली सभी जातियों की एकता को शक्तिशाली बनाने में विश्वास करता हूं। मैं इस एकता की हमेशा कोशिश करूंगा।''

सन् 1930 में सत्याग्रही के प्रतिज्ञा-पत्र में इस बात का साफ आदेश था—''कोई सत्याग्रही जानबूझकर साम्प्रदायिक झगड़े का कारण नहीं बनेगा। साम्प्रदायिक दंगे की सूरत में वह किसी की तरफदारी नहीं करेगा। जिस तरफ न्याय होगा, उसकी सहायता करेगा। अगर वह हिन्दू है तो मुसलमानों और दूसरे सम्प्रदायों के साथ उदारता का व्यवहार करेगा और यदि उन पर हिन्दू हमला करेंगे तो उनकी रक्षा में अपने प्राणों का बलिदान करने से न हिचकेगा। यदि हिन्दुओं पर हमला होगा तो मन में बिना बदले की भावना लिए हिन्दुओं की रक्षा में अपने प्राणों की बलि चढ़ा देगा। वह अपनी पूरी ताकत से हर ऐसी स्थिति को रोकेगा जो साम्प्रदायिक दंगे का कारण बन सकती है।''

गांधी ने साम्प्रदायिक एकता की व्याख्या करते हुए कहा—''साम्प्रदायिक एकता दिलों की अटूट एकता का नाम है।'' *(कन्सट्रक्टिव प्रोग्राम, पृ. 7)*

गांधीजी हिन्दू सम्प्रदायवादियों के संकीर्ण दावे को गलत मानते थे कि बहुसंख्यक होने के नाते हिन्दुस्तान खास हिन्दुओं का देश है। गांधीजी ने इस दावे का खंडन करते हुए कहा—

''हिन्दुस्तान उन सब लोगों का देश है जो यहां पैदा हुए और पले-पुसे हैं और जो दूसरे देश का आसरा नहीं लेते। इसलिए हिन्दुस्तान जितना हिन्दुओं का है उतना ही वह पारसियों, यहूदियों, हिन्दुस्तानी ईसाइयों, मुसलमानों और दूसरे और हिन्दुओं की है। आजाद हिन्दुस्तान में हिन्दुओं का नहीं, हिन्दुस्तानियों की हुकूमत होगी और उसका आधार मजहब या साम्प्रदायिक बहुमत न होगा बल्कि बिना मजहबी भेदभाव के समूचे राष्ट्र के नुमाइन्दों का बहुमत होगा। आजाद हिन्दुस्तान में लोग अपनी सेवा और योग्यता के बल पर चुने जायेंगे। मजहब एक व्यक्तिगत चीज है, जिसका राजशासन में कोई दखल नहीं होना चाहिए।'' *(हरिजन सेवक, पृ. 249-50)*

''धर्मनिरपेक्षता की गांधीजी की समझ संपूर्णतावादी और 'आधुनिक' थी। किसी भी देश की तरह भारत में भी धर्मनिरपेक्षता को चार अर्थों में समझा जा रहा है। पहला धर्म को राजनीति में घुसपैठ नहीं करना चाहिए, उससे राजनीति, अर्थतंत्र, शिक्षा और सामाजिक जीवन और संस्कृति का अलगाव होना चाहिए और धर्म को व्यक्ति का निजी मामला समझा जाना चाहिए। धर्मनिरपेक्षता की किसी अन्य तथाकथित भारतीय भाषा की बात करना, जो इसके विरोध में होगी, धर्मनिरपेक्षता की उपेक्षा करना है। धर्मनिरपेक्षता का यह भी मतलब नहीं है कि जीवन से धर्म को खत्म कर दिया जाय या उससे शत्रुता निभाई जाये।'' *(प्रो. विपिन चंद्र, गांधी, धर्मनिरपेक्षता और साम्प्रदायिकता)*

1931 के कांग्रेस अधिवेशन में यह प्रस्ताव भी था, ''राज्य सभी धर्मों के प्रति तटस्थता का बरताव करेगा।'' गांधी सर्वधर्म समभाव और सभी धर्मों के प्रति तटस्थता में कोई अंतर नहीं मानते थे। धर्म को गांधी व्यक्तिगत सद्‌गुण मानते थे और इसीलिए उन्हें धर्म और राजनीति में अलगाव संबंधी धर्मनिरपेक्षता की परिभाषा कभी मान्य नहीं थी। उन्होंने तो यहां तक कहा कि सत्य के प्रति उनके समर्पण ने ही उन्हें राजनीति में लाया। धर्म को गांधी ने नैतिकता और जीवन की आचार संहिता माना था। उनके धर्म का मतलब कदापि हिन्दू धर्म या कोई अन्य धर्म न था, सब समान थे।

आश्चर्यजनक था कि गांधी को गोली मारने वालों ने गोली मारने से पहले उन्हें गद्दार कहा। लेकिन उसी गांधी ने अपना प्राण न्योछावर करके भी इस देश में बुनियादी एकता को अटूट बना दिया। ''संसार के सभी धर्म शिक्षकों ने सत्य का जो महान् संदेश दिया है मैं उन पर विश्वास करता हूं। मैं निरंतर यह प्रार्थना करता रहता हूं कि निन्दा करने वालों के प्रति मेरे मन में जरा भी रोष न आए। यदि हत्यारे की गोली का शिकार बनकर मुझे अपने प्राणों की बलि चढ़ानी पड़े तब भी मेरे होठों पर *'राम'* का ही नाम हो।'' गांधी की इच्छा पूरी हुई। *'हे राम!' कहकर ही गांधी ने प्राण त्याग किया।* ❑

कविता

आभार तुम्हारा जयप्रकाश

–हरीन्द्र दवे

(देश पर लादा गया आपातकाल समाप्त होने पर जनता ने मुक्त सांस ली। इस घटना पर जे. पी. की जुझारू वृत्ति के सम्मान में लिखी गयी इस सशक्त गुजराती कविता का भावानुवाद भवानी प्रसाद मिश्र ने किया था।)

आज हम सब मिलकर एक साथ
खुलेआम तुम्हारा आभार मान रहे हैं
इसके लिए तुम्हारा आभार!

कुम्भकर्णी नींद में सोये पड़े देश को
जगा देने वाला बल
तुम्हारी क्षीण काया से प्रकट होनेवाली
आवाज़ में कहां से आया
इसे लेकर हमारे आश्चर्य का
अभी तक अन्त नहीं हुआ है।

हमारे पाँव माटी के हैं ऐसा मानकर
हम भूल गये थे अडिग खड़े हो जाना
अपने पदचिह्नों के पीछे-पीछे
चलने की शक्ति दी हमें तुमने
यह रात अब कभी न बीतेगी
ऐसा मानकर
इस निबिड़तम काली रात में
लम्बी-लम्बी उसाँसें खींचते हुए
मानों हम प्राण ही खो बैठे थे
क्या जाने तभी तुम
सूरज बनकर कैसे आ गये!

हम गाने के लिए
वसन्त के आगमन की प्रतीक्षा में थे
वसन्त आया और चला भी गया :
"गीत गाना मना है इस समय"
फूल स्तब्ध होकर सोचते रह गये
कि हम किसी वृन्त पर हैं
कि हमें किसी ने चुनकर मसल दिया है
या किसी भारी पाँव की एड़ी के नीचे
इस समय कुचले हुए पड़े हैं!

हवा की एक लहर को रोककर
पूछ रही थी दूसरी लहर :
"इस उपवन में लहरने के पहले
किसी से पूछ लेना जरूरी तो नहीं है?"

ऐसी भयानक परिस्थिति में
जब सबकी वाणी खो गयी थी
तुम बोले
तुम्हारे शब्दों का रंग लाल नहीं था
किन्तु उनसे रक्त की बूंदें टपक रही थीं–
उनकी लालिमा ने हमारे भयभीत फीकेपन को
मानो एक चटख रंग दे दिया।
देश के मदमत्त राजपुरुषों से
तुमने सीधा-सादा मानवीयता से भरा प्रश्न किया
"तुम जिसे खोदकर खाये जा रहे हो
क्या तुम जानते हो वह तुम्हारी मातृभूमि है?"

राजपुरुषों के अट्टहास ने
एक क्षण के लिए मानवता को पीछे
धकेल दिया
किन्तु उसके होंठों पर सतत सुलगता हुआ
एक सवाल उठता चला गया :
"क्या तुम जानते हो कि तुम्हारे पाँवों के नीचे
जो कुछ कुचला जा रहा है
वह स्वतंत्रता है
तुम जिसकी अवगणना कर रहे हो
वह जीवन है
और तुम जिसे नगण्य मान बैठे हो
वह आदमी है, मनुष्य है, मानव है।"

तुम्हारे सवाल हवा बनकर फैल गये
बीज बनकर माटी में पैठ गये
बरसने लगे बरसात बनकर
सरसने लगे वे प्रत्येक कण में से
ताजे और टटके और हरे अंकुरों की तरह!

तुमने कहा : आजादी
मगर उन्होंने कहा : बन्धन
तुमने कहा : जीवन
उन्होंने कहा : मौत!

सत्ता से छके उन लोगों ने तो
मौत को ही बेलगाम दौड़ाया था
मगर तुमने आज़ादी की अपनी तड़प के बल पर
थाम ली उसकी लगाम!

आज़ादी की तुम्हारी पुकार ने
हर आदमी के अन्तर के परदे हटा दिये
तुम सूर्य बनकर चमक रहे हो, लोकनायक
और स्वतंत्रता के सूर्य के लेखे रात कहाँ?

हमें असत में से सत की तरफ
तमस में से ज्योति की तरफ
मृत्यु में से अमृत की तरफ ले जाने वाले मसीहा
आज हम सब खुले में एक साथ मिलकर
तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकट कर पा रहे हैं
इसके लिए तुम्हारा आभार! ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार, कार्य.संपादक : अशोक मोती। छपी प्रतियाँ : 1500